Reel 15|41800

॥ श्रीमते रामानन्दाय नमः ॥

श्रीमानस शंका समाधान रत्नावली

(द्वितीय भाग)

लेखक एवं प्रकाशक

मानसतत्वान्वेषी **पं० श्रीरामकुमारदासजी** रामायणी

श्रीरामग्रन्थागार मणिपर्वत श्रीअयोध्याजी।

ये दोषाः समुदीरिता बुधगणै रामेऽथ रामायणे
निर्जीवा किल साधुतर्करहिताः या याश्च दुर्युक्तयः।
ग्रन्थेऽत्रविवेचनैश्च विविधैः सच्छास्त्रतः खण्डिता
सत्यासत्यविवेकपूर्णकुशलास्ते शीलयन्तु स्वयम् ॥

(पं० श्रीवज्रांगदासजी, रामायण संदर्भ)

प्राप्ति स्थान

१—पं० श्रीस्वामीप्रसाद अड़जरिया वैद्याचार्य
श्रीगीता पुस्तक भण्डार, छतरपुर (म० प्र०)

२—श्रीराजेन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'राज साकेती'
सम्पादक-युग-गति

सरस्वती प्रेस, रायगंज, अयोध्या (उ० प्र०)

श्रीरामानन्दाचार्य जयन्ती २०२६ वि०। निवछावरि ४) रु०

❀ श्री मते रामानन्दाय नमः ❀

श्रीमानस शंका समाधान रत्नावली

(द्वितीय भाग)

लेखक एवं प्रकाशक

ग्रतत्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी

श्रीरामग्रन्थागार मणिपर्वत श्री अयोध्याजी

दोषाः समुदीरिता बुधगणै रामेऽथ रामायणे
र्जीवा किल साधुतर्करहिताः या याश्च दुर्युक्तयः ।
न्थेऽत्रविवेचनैश्च विविधैः सच्छास्त्रतः खण्डिता
त्यासत्यविवेकपूर्णकुशलास्ते शीलयन्तु स्वयम् ॥

(पं० श्रीबज्रांगदासजी, रामायण संदर्भः)

प्राप्ति स्थान

१—पं० श्रीस्वामीप्रसाद अड़जरिया वैद्याचार्य
छतरपुर (म०प्र०)

२—श्रीराजनाथ श्रीवास्तव 'राज साकेती
सम्पादक युग-गति

सरस्वती प्रेस, रायगंज; अयोध्या (उ०प्र०)

श्रीरामानन्दाचार्य जयन्ती २०२६ वि० । निबछावरि ४)

❊ अभिनन्दन ❊

डा० श्रीरामतवक्या शर्मा एम० ए० डी० लिट्. हिन्दी विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

सारस्वत-साधना के प्रतिमान, प्राच्य-विद्या के जीवित विश्वकोष, तुलसी-साहित्यविशेषज्ञता के पर्याय तथा साधुत्व, वैदुष्य एवं तर्क-कौशल के अपूर्व संगम पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी ने समग्र भारतीय वाङ्मय में अन्तर्निहित विचार धारा के स्वस्थ, ऊर्जस्वल तथा वर्चस्वी स्वरूप के प्रकटीकरण एवं प्रचार-प्रसार में असाधारण योगदान किया है। भारतीय संस्कृति एवं साधना के आधारस्तम्भ गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी की दिक्कालजयी रचना 'श्रीराम चरित मानस' के स[…] में उत्पन्न शंकाओं का समाधान उन्होंने जिस विदग्धता, वै[…] निकता और मार्मिकता से किया है, वह सर्वथा समर्हणीय [...] वस्तुतः ऐसे ही सत्प्रयास के लिए 'न भूतो न भविष्यति' [...] कथन सत्य प्रतीत होता है। मेरा दृढ़ विश्वास है, 'श्री मानस समाधान रत्नावली' को पढ़कर घोर-से-घोर तार्किक और कट्टर-से-कट्टर विरोधी भी जगजननी पार्वती की दशा को प्राप्त होगा-

"सुनि शिव के भ्रम-भंजन बचाना।
मिटि गइ सब कुतर्क कै रचना॥" (मा.१.११६.७)

अस्तु, इस अनर्घ ग्रन्थ-रत्न का मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूं और अनन्त श्री-विभूषित आचार्य-प्रवर से प्रार्थना करता हूँ कि 'समाधान-रत्नावली' के अन्य रत्नों को भी यथा शीघ्र प्रकाश में लाने की कृपा करें। रामतवक्या

* भूमिका *

(ले० पं० श्रीजानकीनाथशर्माशास्त्री सम्पादनबिभाग कल्याण)

पं० श्रीरामकुमारदासजीकी पुस्तकें महात्व की होतीहैं। उनकी सूझबूझ शास्त्रीयपरिश्रमको देखकर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ताहै। आपकी पुस्तक समाधानरत्नावली प्रकाशितहो रहीहै। यह अत्यन्त रोचकपुस्तक उनके दीर्घकालिक स्वाध्याय भजन तथा तपस्याका फलहै।

मानसकी शंकाओंपर बहुतोंके समाधान आदि प्रकाशित होते रहेहैं। पर यह ध्यानदेनेकी बातहै कि अधिकांशने अपने बुद्धिचातुर्य से ही समाधान कियेहैं। कुछ लोगोंने मानसकी ही पंक्तियों द्वारा समाधान करनेका प्रयत्न कियाहै। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि गोस्वामीजीका अध्ययन विशालथा। उन्होंने 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' यहग्रन्थ लिखाथा। उनकी बहुतसी पंक्तियोंकी संगति केवल मानस से ही नहीं लगसकती। उनकीकुछ बातें ऐसीहैं जिनके लिये झंख मारकर ग्रन्थान्तरोंकी शरणलेनीही पड़तीहै जैसे 'गौतमनारीशापबस उपलदेह धरिधीर' गाधि तनय सब कथा सुनाई। जिहि प्रकार सुरसरि महिआई॥ अगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षण्मुख जन्म सकल जगजाना॥ भइजग बिदितदक्षगति सोई। 'यह इतिहास सकल जगजाना॥'

आदिमें कवि स्वयं इसबातको स्वीकार करतेहैं कि इनके जाननेके लिये अन्य ग्रन्थ देखने चाहिये। यहबात मानसहीक्या बाल्मीकि रामायणके बिषयमें भी है। बालकांड सर्ग ६४ का यह श्लोक ध्यान देने योग्यहैं—

यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोधजयेषिणम्।
दशबर्षसहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे ॥१०॥
ब्राह्मणः सुमहसेजास्तपोबलसमन्वितः।
उद्धरिष्यति रम्भे त्वां मत्क्रोधकलुषीकृताम् ॥११॥

ग्रन्थान्तर न देखनेवाले तथा परम्पराका अन्धानुसरण करनेवाले प्रायः सभी टीकाकारोंने इस उद्धारक ब्राह्मणका नाम

बशिष्ठ बतलायाहै किन्तु वास्तवमें यह कथा स्कदपुराणके ब्रह्म-खण्डमें है। वहां रामसेतुकुण्डमें गिरने तथा रामरजसेपूत होने के कारण अहल्याहीकी भांति इसका तथा उर्वशीका उद्धारहोना बतायाहै। इसमें हेतुमात्र एक ब्राह्मण होताहै जो एक राक्षसीके बधकेलिये अपने धनुषपर उस शिलाकाही संधान करताहै जो वास्तवमें रम्भाथी।

पं० श्रीरामकुमारदासजीका शास्त्रीय अध्ययन अत्यंत-गहनहै। उनके जीवनका यहीएक प्रधानबिषय रहाहै। 'रुचिर्व्यसनं श्रुतजं प्रकृतिसिद्धिमिदं हि महात्मनाम्' को आपने करदिखायाहै। आपने समाधानमें तर्क, युक्तियां, मानस, गोस्वामीजो महाराजके अन्यग्रन्थोंके साथही समस्त वेदपुराणागमों काभी भाव उँड़ेलदियाहै। आपके समाधान सर्वोत्तम हुयेहैं, यह कोई भी पाठक स्वीकार करेगा। आपकी प्रत्येक रचनामें श्रम एवं सूक्ष्म अनुसंधान पूर्वक तत्वोद्घाटन रहताहै जिससे निरतिशय आनन्द आताहै। बड़ी प्रसन्नताकी बातहै कि इधर आपनेमानस का भागवतादि श्लोकोंके साथ तुलनात्मक चौपाइयां लिखीहैं। अबतक कई नाटकों, भगवद्गीता तथा भागवत परका कार्यहो चुकाहै। यद्यपि इस दिशामें काशीकी एकसंस्था पर्याप्तधन लगा कर कार्यकर रही है। पर उसका कार्यसर्वथा नगण्यहै। ऐसाकार्य धन या धनियोंके वशका नहींहै। वहतो कोई भगवत्कृपापात्र सच्चाप्रेमी भक्तहीकरसकताहै। यदि आपकीवह पुस्तकेंभी प्रकाशितहो सकींतो विद्या तथाअनुसंधान क्षेत्रमें एक अद्भुत देनहोगी।

वस्तुतः आज के जगत में ग्रन्थ तो बहुत ही प्रकाशित हो रहे हैं, बिना समझे बूझे लिखने वाले लेखकों काभी अभावनहींहै। किन्तुऐसा साहित्य बरदाननहीं, अभिशाप ही सिद्धहोताहै।' पण्डितजीकी पुस्तक ऐसे लेखकोंतथा सामान्य जनता सबकेलिये सब प्रकारसे शिक्षाप्रद तथा कल्याणकारीही सिद्धहोगी, ऐसी आशाहै। पण्डितजी तप भजन तथा स्वाध्याय के मूर्तिमानरूपहै। हमारे सौभाग्यसे उनकी जितनीही कृतियां सामने आयेंगी, हमारा परम उपकारही होगा।

❋ लेखक की ओर से ❋

श्रीमत्तुलसिदासस्य भारती भोगिदंशिता ।
मम रत्नावली हीयं तामद्योञ्जीवयिष्यति ॥
(क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मन्थनं क्षीरवारिधेः ।
किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मंदरः ॥ कस्यचित्)

विबिधिबिचार सयुक्ति तर्क शंका समधानी ।
ऋषि मुनि वेद पुराण शास्त्र सम्मत सुप्रमानी ॥
श्रुति गुरु शास्त्र उच्छिष्ट रखी नहि कछु मनमानी ।
मानस का शुचि भाव कहा समझै अज्ञानी ॥

अपनेढंगसे शंकासमाधान करनेका सूत्रपात मैंने मानसपीयूष प्रथमसंस्करणमें श्रीगुरुपदरजःबन्दन को लेकर किया था मानसमणिमें आरम्भसेही उसके प्रबंधक, प्रकाशक बाबू शारदाप्रसादजीके सुझावपर 'शंका समाधान' स्तम्भरखागया । प्रेमियों की शंकायें आतीं और मैं समाधान करता । फिरतो अन्यपत्रोंने भी इसे अपनाया । इसमें मैं शंकाकारों एवं बाबू शारदाप्रसाद जी मंत्री मानससंघका बहुत-बहुतही कृतज्ञ हूं । यदिशंकाकारसज्जन गण नई-नई शंकायें न करते तो मैं ऐसी-ऐसी शंकायें नहींही उठा सकताथा और मंत्रीजी मुझसे समाधान न कराते तो मैं न तो मानसमें इतना गोताही लगासकता और न समाधानकी पुष्टि के लिये सद्ग्रन्थोंका इतना गहन अनुशीलनही करसकता था ।

मानसमणि एवं पत्रपत्रिकाओंमें दोसौसे ऊपर शंकाओंपर मेरे समाधान निकल चुकेहैं । इधर दूसरे शंकाकार लोग प्रायः पूर्व प्रकाशित शंकायेंही प्रेषित करने लगे, परमुझे पिष्टपेषण अभीष्ट नहीं रहता और सभी पत्रपत्रिकायें सब देख नही पातेहै और उनके अङ्कभी स्थाई नहीं रहते । इससे मैं उन शंकासमाधानोंको ग्रन्थरूपमें प्रकाशित करता हूँ । ग्रन्थ में प्रायः सभी समाधान परिवर्द्धितहैं । मैं सभी शंकाकार सज्जनों का पतादेना चाहता था परन्तु अपनी अज्ञानतासे विवश हूँ । सुनाहै यूरोपमें पत्रपत्रिकाओं के स्वामी भरिपूरपारिश्रमिक देकरही किसी तरह

का भी लेख लेते हैं। इसीसे लेखके साथ में लेखकका नामतो देतेहैं, परन्तु साथमें लेखकका पता नहीं छापते। लेखकसे कोई परिचय करना चाहे तो पत्रस्वामी के माध्यमसे करसकता है। भारतमें अंग्रेजोंके बेटे-पोते-शिष्यादि जो हिन्दी पत्र पत्रिकाओं के संपादक-प्रकाशक आदि होतेहैं वे लेखक के नामकेसाथ चाहे तीन हाथकी लम्बी पूँछ (उपाधि, डिग्री) हो उसेतो तीन पंक्ति में लेखके साथ में छापेंगे पर तीन अंगुलका ग्र ाम पो० जिला तीन शब्दोंमें लेखके साथ नहीं छापैंगे। इसीसे अपने कृपालु शंकाकार सज्जनों में सबका पता मैं नहीं दे सका और जिनका पता किसीतरह ज्ञातहो सका उनका पता उनकी किसी शंकाके साथ में दे दिया है।

पं० श्रीजानकीनाथ शर्माजीने अपनी सौजन्यतासे भूमिका लिखदीहै, पर उन्हें कुछ कहनाहो स्वयं अपने आपकोही कहना है वे इतने अपनेहैं। किसीभी समाधान पर मेरा कभीभी 'इद-मित्थम्' का दुराग्रह नहीं रहा करता, परन्तु पूर्वाचार्य सिद्धान्त विरोधरहित सच्छास्त्र एवं सत्तर्कका अनुगमनतो हृदय और मस्तिष्क करताहीहै। सच्छास्त्रानुसार सुझानेपर मैं अपनी भूलों त्रुटियों (गलतियों) को माननेकेलिये सदैव तैयार रहता हूँ।

मेरेपास यदाकदा मौखिकसूचना आया करतीहै कि 'अमुक अमुक रामायणबन्धु कहतेहैं कि पं० रामकुमारदासजी तो वेद पुराणोंकेपण्डितहैं, उन्होंने किसी परम्पराके रामायणीसे रामा-यण लगायाही नहींहै।' इत्यादि मैं इसे सर्वथा स्वीकार करता हूँ कि सौभाग्यवश मैंने परम्पराके किसी रामायणीसे श्रीतुलसी साहित्य नहीं लगायाहै अर्थात् मैं घोखू (रट्टू) रामायणी नहींहूँ।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने अपने दीक्षागुरू से श्रीरामचरित्र पढ़सुनकर नानापुराण निगमागमका मथनकर के तब श्रीरामचरित मानसका प्रणयन कियाहै। श्रीगोस्वामीज सरीखे नाना पुराण निगमागमके मथन करने की किंचित् भी

क्षमता मुझमें नहीं है। अपने सद्‌गुरुकी दीहुई कुंजी से प्राप्य पुराणनिगमागम द्वारा श्रीतुलसी-साहित्यके समझने, लगाने की चेष्टा जागरूकतासे करतारहताहूँ। इसे मैं पुनः स्वीकार करता हूँ कि मेरे इस ढंग से श्रीतुलसी के अनुशीलन का अधिक श्रेय शंकाकार सज्जनों का ही है। हाँ जिन शंकाओंका समाधान दूसरोंके द्वारा लिखागया मुझे कहीं पढ़ने को मिला और वह कुछ ठीक मालूम पड़ा, उन शंकाओंका समाधान मैंने नहीं किया है। प्रेस की प्रेतलीलामें पड़कर मुद्राराक्षासने "थोथी" का "जोथी" "नमो" का 'मनो' आदि अनेकों शब्दोंका अशुद्ध मुद्रण कर दिया है। जिसे विज्ञपाठक सुधार लेनेकी कृपाकरेंगे।

भगवद्भागवतानुचरः—

पं० रामकुमारदासः

जनवरी १९७३ ई०

पुनरुक्तिं परित्यज्य क्रमेणायं मया कृतः ।
बालानां सुखबोधाय न तु पाण्डित्यगर्वतः ॥

अत्र प्रमाणं यत्किंचित् प्रमादाल्लिखितं मया ।
विद्वद्भिः सुविचार्यैव शोधनीयोऽनुसूयभि; ॥

समाधानं मयामूलैर्बहुग्रन्थैर्यथाकृतः ।
तथैवानेकश्रुतिभिरुद्धृतः मानसंग्रहः ॥

महाखेदान् मया सर्वं यथा स्थानं नियोजितः ।
प्राज्ञं बिना प्रयासं मे को ज्ञास्यति विगूढ़धीः ॥

विद्वानेव विजानाति बिद्वज्जनपरिश्रमः ।
नहि बन्ध्या बिजानाति गुर्वीप्रसववेदनाम् ॥

ये शास्त्र संग्रहे मूढ़ा नैव जानन्ति योग्यताम् ।
ते कथं हि भविष्यन्ति हर्षिता पठनेऽस्य च ॥

समाधानानिमान्मिश्राः पठन्तु न पठन्तु वा ।
मया तु स्वीय बोधाय कृतमेतन्न सर्वशः ॥

गच्छतःस्खलनं क्वापि भवेदेव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनः ॥

अयुक्तमस्मिन् यदि किञ्चिदुक्तमज्ञानतो वा मतिविभ्रमाद्वा ।
औदार्यकारुण्यविशुद्धधीभिर्मनीषिभिस्तत् परिमार्जनीयम् ॥

मुद्राकरकराघातकातरा क्वापि भारती ।
करुणार्द्र करस्पर्शैः सुधियः शोधयन्त्विमाम् ॥

त्रुटिश्चेदुपलभ्येत मुद्रणे दृष्टिदोषतः ।
प्रार्थ्यते ग्रन्थकारेण क्षन्तव्यं सुमनीषिभिः ॥

(संकलित)

—::॥::—

श्रीतुलसी-अष्टकम्

नमामि हुलसीसूनुं तुलसीं वै महाकविम् ।
यस्य वाक्यामृतं पीत्वा नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१॥

सीतारामकथाकारं सीताराम उपासकम् ।
रामानन्दान्वयं नित्यं हुलसीनन्दनं नुमः ॥२॥

सकल कलुषहंत्री स्वर्गदात्री नराणाँ,
कुमतिविमति हर्त्री मुक्तिसोपानकर्त्री ।
विमलतरचरित्री भक्तिभाजां भवित्री,
जनमनतमहर्त्री मानसे रामगाथा ॥३॥

मधुरमधुरगीतं रामचरितामृतं यो;
व्रजप्रबलपुनीतं यस्य विमला सुकीर्तिः।
जयति तुलसिदासः काव्यकुसुमाकरस्य,
हरियशरससिक्तः कोकिलः मत्तभृङ्गः ॥४॥

श्रीमत्तुलसीदासाय रामभक्ताय साधवे ।
सीतारामपदाम्भोजभ्रमराय नमो नमः ॥५॥

सर्वश्रुतिधरं विज्ञं नानाभाषाविशारदम् ।
दिव्यप्रबन्धकर्तारं हुलसानन्दनं नुमः ॥६॥

रामचन्द्रकथासिन्धून् मथित्वा तुलसीकविः ।
दर्शयन् परमं तत्वं चकार मानसामृतम् ॥७॥

नानापुराणनिगमागमक्षीरसिन्धो
निर्मथ्य देवनरदानववन्द्यशम्भुः ।
श्रीरामचन्द्रचरितामृतपूर्णचन्द्रं,
निष्काशितो विजयते स हि मानसेन्दुः ॥८॥

श्रीतुलसी--द्वादशी

वेद इक्षुदण्ड राम यश रस काढ़यो विधि
बाल्मीकि पागि कीन्हे शक्कर महान है ।
वेदव्यास बरफी जमाई सु उमंग भरे,
कालिदास कलाकन्द कीन्हें करिकान है ।
सिंहली "कुमार" दास कीन्ही है मलाई स्वच्छ,
श्रीक्षेमेन्द्र क्षीरपाक कीन्हें धरिध्यान है ॥
तुलसी गोसाईं निज कविता कटोरिन में,
षटरस भोग धरे बहु परिमान है ॥ १ ॥

राम को न मानै ताको रावण को वंश जानौ,
कृष्ण को न मानै ताको कंस वंश मानिये ॥
वेद को न मानै बृक वृषभ समान जानो,
शास्त्र को न मानै ताको सांड़िया बखानिये ॥
माता पिता गुरू को न मानै बिड् बारह सो तौ,
द्विज देव गो न मानै रासभ पिछानिये ॥
भक्ति भाव सानी हुलसी "कुमार" तुलसी की,
भाषा को न मानै ताको शाखामृग जानिये ॥२॥

छाई जबै जवनान की रीति सुभारती नीति गई घुलसी ॥
पाप परायण मे नर नारि न भावत भक्ति जो वेद लसी ॥
घोर शृंगार में बूड़ि गई मति मूढ़ कविन्दन की झुलसी ॥
काव्य कला नय भक्ति उधार को बिप्र"कुमार"भये तुलसी ॥

मानस रामचरित्र के भीतर भूरि गुणावलि है शुचि सीको ॥
वेदन को सुचि अथ, अनूपम सोहति दिव्य कथा सियपी की ॥
सार 'कुमार' धरयो सब शास्त्रन काव्य पुराणहुँ सो अतिनीको॥
गागर में भरयो सागर सांवसों लागै लखे कविता तुलसीकी॥४॥

कविता तुलसी कृत सोहति है वसुधा में अनूप लहे छविता ॥
छबि ताकी कहै कवि कैसे कोऊ सियराम सुप्रेमहि की सरिता॥
सरि ताकी नहीं तिहुं लोकन में अवलोकत दे भवधार विता ॥
रवि ता उपमा में "कुमार" नहीं दिन रैनि जगै तुमसी कविता॥५॥

जाके पढ़े सब पाप नसै सियराम स्वरूप हिये झलकाहीं ।
जाके सुने मति निर्मल होति बढ़ै रुचि रामपदाम्बुजमाहीं ॥
जाके गुने गुन राम सियाकर भाषत भाव "कुमार सदाहीं ॥
सो शुचि मानस रामचरित्र पवित्र विचित्र नमो मनमाहीं ॥६॥

जाको सदा सब शब्द सुमंत्र है जो नित रामचरित्रहिं भाषै ॥
जो सियराम स्वरूप अनूप हिए धरि नाम सुधारस चाखै ॥
जाकी कृती लखि विज्ञ "कुमार" न दूसर ग्रन्थ हिये अभिलाषै ॥
सो तुलसी तुलसी सम पावन मो हिय आइ पदाम्बुज राखैं॥७॥

श्री तुलसी तुलसी सम पावन पाव न कौ समता तुलसीकी ।
जा शुचिमानस मानस राजित राजि तहाँ सब पुन्य यशीकी॥
तीरथ तीर थके कवि हेरत है रत राम त्रिया मति नीकी ।
देव "कुमार" कुमारग होत गहो तब आस सुमानस जीकी ॥८॥

मानस में अवगाहत हैं बहुतै अवगाहिगे होंहिगे आगे ।
लेख प्रबन्ध निबन्ध कथा शुचितत्वविचारन में मतिपागे ॥
काव्य महा अरु खण्ड कहानिहु लेखन कै जग सोवत जागे।
रामकुमार अभाग बड़ो नर देह लहे हरि ना अनुरागे ॥९॥

जो निगमागम शास्त्र पुराणन काव्यनको पयसिन्धु बनायो।
सो शिव फेरि मथ्यो बहुकाल अकेलहि ध्यान समाधि लगायो॥
मानस राम चरित्र विचित्र पवित्रसुधा भरि चन्द्र सुहायो।
काढ़ि "कुमार" दियो बहुप्रेमिन जै ऋषि जो महिमण्डल लायो॥१०॥

श्रीतुलसी कलि में जग आइके कीन्हो सबैको बड़ो उपकारो।
वेदनको अतिगूढ़ जो तत्व सो आनि सबै नर बाणि उचारो।
'रामकुमार' को प्रेम-अनूपम मानस में सब भांति सँवारो।
ऐसे महा उपकारी के पावन हैं सबभाँति प्रणाम हमारो॥११॥

आजु परे कलिकौतुक में नरनारिन को भव भूंर छला है।
सूझत नाहि उपाय घने कलि जीतन कौन समर्थ भला है॥
बैठि इकन्त सुसन्त विचारि लख्यो सबही मतएक मला है।
क्यों न कुमार पढ़ै रचिदीन्ह सुमानस जो हुलसीको लला है॥१२॥

अमर सत्य

विश्वकवि दास तुलसी सों हुआ अबतक-न-अब होगा।
काव्य नायक सियाबर सों हुआ अबतक-न-अब होगा॥ १॥
करूं मुख एक से कैसे प्रशंसा उस महाकवि की।
प्रशंसा पात्र तुलसी सों हुआ अबतक न अब होगा॥ २॥
चरित चित्रण किया जैसा सुरासुर खग मनुज पशु का
सूक्ष्मदर्शी कोई ऐसा हुआ अबतक न अब होगा॥ ३॥
किया त्रेता में जैसा वह अपूरब काव्य दशशिरबध।
आदिकवि देववाणीका हुआ अबतक न अब होगा॥४॥
मनुजभाषा में कलिमें अब अपूरब काव्य प्रगटाया।
काव्य जैसा है मानस अस हुआ अबतक न अब होगा॥५॥

हुआ मानसमें वर्णन ज्यों क्रम औ ज्ञान भक्ती का।
समन्वय इस तरह सुन्दर हुआ अबतक न अब होगा ॥६॥
हुये जिसलग्नमें प्रगट सुदी श्रावण की सप्तमि को।
अह ! शुभ लग्न दिन वैसा हुआ अबतक न अब होगा ॥७॥
रचायें सब कोई घरघर महोत्सब उस महाकवि का।
न जाने आयुमें ऐसा दिवस हो या न अब होगा ॥८॥
बतायें विधि 'कुमार' ऐसे न हार हरिजन भजे जो नर।
मुक्त माया के बन्धन से हुआ अबतक न अब होगा ॥

श्रीतुलसी-चतुष्टयी

१—खुले सुजन जन भाग्य मातु हुलसी सुत जायो।
गुरु नरहरि ढिग बैठि भक्ति हरि मानस पायो ॥
विरच्यो व्यास पुराण, प्रचेतसमुनि रामायण।
तुलसी मानस विरचि नरन किय धर्म परायण ॥
कीन्हे द्वेष नहि काहु सन सबै करन चह हरि भगत।
हुलसी 'कुमार' तुलसी जगत विविधि ग्रंथ लिखि जगमगत ॥
२—सकल उपनिषद गाय बत्स अर्जुन कहँ कीन्हे।
दोग्धा हरि गोपाल दुग्ध गीता दुहि दीन्हे ॥
सब श्रुति शास्त्र पुराण गाय शंकर दुहि लीन्हे।
पार्वती हित रामचरितमानस पय कीन्हे ॥
तुलसिदास सोइ दूध लहि करि दधि मथि माखन कियो।
राम चरित भाषा विमल लहि 'कुमार' बुधजन जियो ॥२॥
३ आगम अगोचर ब्रह्म अमित ब्रह्माण्ड उपायो।
फिरि द्वैपायन बपुहिं प्रविशि सब तत्व लखायो ॥
सत्रहपुराण वेदान्त स्मृति भारत रचि गायो।
पै न लही शुचि शान्ति भागवत रचि सचु पायो ॥

हुलसी 'कुमार' भागवत लखि आगम निगम पुराण घृत।
मानसादि निज ग्रन्थ महँ ठौर ठौर अनुवाद धृत ॥
४ जन्मदेत पितु मातु तजे चुनियाँ तिहि पाले ।
गुरु नरहरि लिय शरन पान पग दीन्ह न खाले ॥
शेष सनातन चरन बैठि विद्या सब लीन्हे ।
करि विवाह तिय त्यागि रामसिय दर्शन कीन्हे ॥
लहि श्री मारुतिकी कृपा शम्भु कथित मानस कहे।
जै 'कुमार' तुलसी सदा जगमगात सब जग रहे ॥

श्रीतुलसी-विंशति

१ धन्य पुण्य मय दिवस तिथि मास नक्षत्र विचारि ।
धन्य देश जहँ प्रगट भइ तुलसी गिरा कुमारि ॥
२ रूप माधुरी मय लसति मन उनमाथिनि बाल।
देखे अनदेखे तऊ सबभोगत सब काल ॥
३ बहु युवतोरसलम्पटन वर्ष शतन उर लाइ ।
चुम्बहिं भोगहिं ताहि तउ नहिं कुमारपन जाइ ॥
४ परम सुन्दरी षोड़शी तुलसी मुख प्रगटानि ।
नित कुमार ता पदकमल नमत जोरि युग पानि ॥
५ धनि तुलसी कृत मानसहिं धनि तुलसी को ज्ञान।
भरेउ वेद वेदान्त रस लहि हों नर मति मान ॥
६ नमो नमो तुलसी चरण राम भक्त शिरमौर।
जिन कृत मानस शरण तजि जनहिं न दूसर ठौर ॥
७ कलि सों ह्वै निर्भय जपत राम नाम सब काल।
जय तुलसीधारी जगत तुलसी हुलसी लाल ॥
८ जय तुलसी हरि बल्लभा तुलसी बल्लभ राम ।
जय रामायण प्रियदुहुन मानस कथित ललाम॥
९ जय तुलसी तुलसी सरिस पावन करन निरोग ।
सबहिं सुलभ तजि अपन पर नम 'कुमार' सब लोग ॥

१० तुलसी सम पावन परम तुलसी हुलसी लाल ।
जयति जगत पावन करन मानस मंजु मराल ॥
११ हिय कर गर तुलसी लसत तुलसी सम प्रभुप्रीय ।
राम लखन सिय धारि उर रटत राम रमणीय ॥
१२ बहु प्रबन्ध जग उख सम चूसत नीरस होत ।
धनि "कुमार" तुलसी कवित पद पद नव रस स्रोत ॥
१३ विमल बतकही जिन लिखी शुचि उदार सम्वाद ।
नम कुमार तुलसी चरण वितरेउ जग अहूलाद ॥
१४ ज्यों तुलसीके दल बिना नहि तुष्टत भगवान ।
त्यों तुलसी कृत बिना नर नहि कुमार मतिमान ॥
१५ गौर बरण कमनीय बपु ऊर्ध्वपुण्ड्र युत भाल ।
जय कुमार तुलसी जगत जैन बौद्ध मत काल ॥
१६ गीत कवित दोहावली विनयादिक सबग्रन्थ ।
मानस भावहिं लखन को तुलसी रच्यो सु पन्थ ॥
१७ सरसिज संकुल शोभित बहु सरवर जग आहिं ।
मानस केर 'कुमार' गुण एक मानसहि माहिं ॥
१८ ताप हरन मंगल करन लोक लोक आलोक ।
जिहिमानस मानस बसत तिहि न कबहुँ भयशोक ॥
१९ मानस भाव भरै भगति बुद्धि रु टीका नाहिं ।
गृहिणी गृह कारज करै वेश्या लूटहिं बाहि ॥
२० भावअलंकृति रस यमक उपमा छन्द बिचार ।
तुलसी कवि चक्कवै कृत कविता विदित कुमार ॥

❊ ललकार पञ्चक ❊

१—हिन्दू मुसलिम क्रिश्चियन जिनके है सुविचार ।
सबहो के उरमें धंसी तुलसी की ललकार ॥

२—मर्त्य भुवन महं जहाँलगि सभ्य जगत व्यवहार।
सकल देश व्यापक भई तुलसी का ललकार॥
३—कोउ विद्वान न लखगत यहि जगती यहि बार।
जो नहिं मानत धारि उर तुलसी की ललकार॥
४—दर्शन साहित धर्म नय जहं लगि शास्त्र 'कुमार'।
सबमहँ पारंगत लखहु तुलसी की ललकार॥
५—द्वेष न कबहूं काहु सन सबकर किय सत्कार।
ताते सब सादर सुनत तुलसी की ललकार॥

❋ श्रीतुलसी वन विध्वंसक ❋

भोग मिलै बहु भाँतिन सों मत मानस रंग चहै जितने हों।
मानस पंक्ति अलापि कहैं कहुं दुःख प्रसंग चहै जितने हों॥
फीस लिये बिन नाहिं करैं कछु रेमिन जूथ चहै जितने हों।
लोक रिझावन काम 'कुमार' जू भावकुभाव चहै जितने हों॥

भारत पुराण तंत्र आदि को न नाम सुन्यो,
देख्यो नाहिं कबहूं न चाव उर आवहीं।
व्याकरण वेद पढ़ि आयु को गँवायो नाहिं,
साहित्य वेदान्त की न बातहू सुहावहीं॥
मानस रामायण के भावन को भ्रष्ट करि,
भाषि भद्दहदै भूरि भ्रम उपजावहीं।
विद्या ना 'कुमार' पर बस्त्र बहु बाचा बल,
मूढ़ रमा-वाहन से विभौ लूटि लावहीं॥

❋ अयोध्या काण्ड ❋

शंका १

दशरथ जी ने श्री रामचन्द्र जी को राज्याभिषेक के समय भरत और शत्रुघ्न को ननिहाल क्यों भेज दिया और अगर भेज दिया तो बुलाया क्यों नहीं ?

(सेठ विश्वनाथ चरखाडि)

समाधान

नमो नमो तुलसी चरण राम भक्त शिर मौर ।
जिनकृत मानस शरण तजि नरहिं न दूसर ठौर ॥

आर्ष काव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के बाल काण्ड सर्ग ७३ में लिखा है कि जिस दिन जनकपुर में श्री रामादि चारों भाइयों का विबाह होने को था उसी दिन कैकय नरेश के पुत्र श्री भरत के मामा युधाजित जनकपुर पहुँचे और महाराज दशरथ जी से प्रार्थना किया कि मेरे पिता जी भरतलाल को देखना चाहते हैं मैं अयोध्या गया था, वहाँ से आ रहा हूँ। आगे चलकर ७७ वें सर्ग में लिखा है कि जनकपुर से अयोध्या लौटने पर कुछ दिन बाद युधाजित के पुनः आग्रह करने पर दशरथ जी ने भरतलाल से कहा कि तुम्हारे मामा तुम्हें बुलाने आकर बहुत दिनों से टिके हैं। पिता का बचन सुनकर भरत जी शत्रुघ्न को साथ लेकर श्री रामजी से और माताओं से आज्ञा लेकर विदा माँग कर मामा के साथ चले गये।

शंका ३

बालकाण्ड में श्री सरकार के विवाहोपरांत लौटने पर मातायें—

देव पितर पूजीं विधि नीकी। पूजी सकल कामना जी की॥
सबहिं बन्दि मागहिं बरदाना। भाइन सहित राम कल्याना॥

तो इस अवसर पर—

अन्तर हित सुर आशिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं॥

पुनः जब सरकारी राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी तो उस समय भी तो मातायें—

पूजीं ग्राम देवि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥

तो आज भी देवता लोग अन्तरिक्ष से आशीर्वाद क्यों नहीं देते? (जगदीशनारायणसिंह 'प्रेम' भागलपुर)

समाधान

रामात्मकान् रामभक्तान् श्री गुरुं रामरूपिणम्।
रामप्रियां रामभक्तिं वन्दे रामं रमाधवम्॥

मानस में यह पहले लिखा जा चुका है कि रावण से सभी लोग (खासकर देवगण) अत्यन्त त्रस्त रहते थे। किसी की कुछ चलती नहीं थी और जब सभी देवताओं की प्रार्थना पर भगवान ने मनुष्य रूप में अवतार लिया है तो रावण बध से पूर्व देवता लोग ऐसा कोई भी काम नहीं करना चाहते जिससे कि श्री राम जी की परब्रह्मत्व की बात रावण जान मान ले।

सती मोह के प्रकरण में इस बात को शंकर जी ने स्पष्ट कर दिया है कि—

रावण मरन मनुज कर जांचा। प्रभु बिधि बचन कीन्ह चह सांचा॥

अतः मैं (शिव) यदि प्रत्यक्ष रूपेण एकान्त में इस समय श्री राम जी के सामने जाऊँगा तो उन्हें जो कि मेरे इष्ट देव हैं साष्टांग दण्डवत् प्रणाम संस्तवन आदि करूँगा ही। तब भला जिसे शिव प्रणाम संस्तवन करैं उन्हें रावण कब मनुष्य मान सकता है ? (जबकि श्री सती जी तो विष्णु तक मानने को तैयार नहीं)। शंका की जा सकती है कि जनकपुर में विवाहकाल में जब सब देवतागण इन्द्र, शिव, ब्रह्मा, आदि सभी अपने असली शरीर से ही गये थे तब क्या रावण से डर नहीं रह गया था कि श्री रामजी के नकली मनुष्यत्व का मर्म खुल जायेगा ? समाधान में समझ रखना चाहिये कि—

(क) अपनी समस्त साज सज्जा से आने पर भी देवता लोग मर्त्य दृष्टि से सर्वथा अन्तर्हित थे।

(ख) दशरथ और इन्द्र के सख्यत्व की बात सर्वसाधारण में विख्यात थी, और दशरथ एवं दशरथ के पूर्वज सदैव से इन्द्रादि देवताओं की सहायता करते आये हैं—

"सुरपति बसै बाहुँ बल जाकै।"
"ससुर सुरेश सखा रघुराऊ।"
"आगे होइ जिहि सुरपति लेई।"

सायत में युवराज पद दे देना उचित समझा गया और इतनी जल्दी भरत जी किसी तरह आ नहीं सकते थे इसीलिये बुलाने का आयोजन भी नहीं किया गया। (मा० म० ५।१२)

शंका २

पूजि ग्रामदेवि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा॥

इसका क्या आशय है, बलिदान करने को क्यों कहा। कार्य हो जाने पर वह क्या क्या बलिदान करतीं और बलिदान जीव हिंसा क्यों उचित है? (कृपालीदेवी श्रीवास्तव)

समाधान

विष्णुं विश्वम्भरं बन्दे साकेतकुलदैवतम्।
श्री साकेतकुलाधीशं प्रपद्ये रंगनाथकम्॥
करोपहारयोः पुंसि बलिः ०। अमरकोश।
बलिः दैत्य प्रभेदे च कर चामर दण्डयोः।
उपहारे पुमान् स्त्री तु० । मेदिनी कोश।
बल संचरणे (भ्वा० आ० से०)

'बलिपूजोपहारे च' प्रसिद्ध धातु है, और बलि का अर्थ विश्वकोश में इस तरह लिखा है कि—

बल्यते दीयते इति बल्दाने सर्वधातुभ्यो इन् उण ४।१।१२ इतीनः १ राज कर। २ उपहार भेंट। ३ पूजा की सामग्री, वह सामग्री जिससे देवताओं को पूजा जाता है। किसी देवता की प्रधान पूजन भोग्य सामग्री जैसे सूर्य को गुड़ओदन, चन्द्रमा को घृत-दुग्ध, मंगल को पावक (जाउरि), बुध को क्षीरान्न, वृहस्पति

को दध्योदन, शुक्र को घृतोदन, शनि को खिचड़ी, शिव को अक्षत, इन्द्र को अपूप (मालपुआ) और विष्णु को हविष्यान्न।

रहस्य ग्रन्थों में अयोध्या के ग्रामदेव विष्णु ❀ बतलाये गये हैं अतः इनके लिये हविष्यान्न का ही ग्रहण हो सकता है—

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। (यजुर्वेद ३१।१४)

हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः परिरेक आसीत्।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधम्॥
यजुर्वेद १३।४

धान की खील (लाजा) और दुग्ध तो नागपूजा की सामग्री ही है अयोध्या की ग्रामदेवि लक्ष्मी जी × ही हैं जिनकी पूजन सामग्री प्रधानतया रोरी, कमल फूल, तिल और गुड़ आदि है। श्री गोस्वामी जी ने एवं श्री सूरदास जी ने उपरोक्त अर्थों में ही बलि शब्द का प्रयोग किया है—

'वैनतेय बलि जिमि चह कागू'
'है मेरो नीको देवता कोशलपति राम'
बलि पूजा चाहै नही चाहै एक प्रीति (विनय पत्रिका)
सिंह को बलि कौआ को खांही।
पर्वत सहित धोइ ब्रज डारौं देउँ समुद्र बहाई।
मेरो बलि औरहिं लै पर्वत इनको करौं सजाई।
(सूरसागर)

❀ तस्मात्पश्चिम दिग्भागे नाम्न विष्णुहरिः स्मृतः।
देवो दृष्ट प्रभावोसौ प्राधान्येन वसत्यपि॥
[रुद्रयामल अ० भा० १४।७४]

× लक्ष्मी क्षेत्रं महापीठं साधकानां सुसिद्धिदम्॥
[रुद्रयामल अ० भा० २७।२०]

श्री गोस्वामी जी ने भरत जी के ममाने भेजने का कारण नहीं लिखा, यहाँ तक कि भेजने के समय की कोई चर्चा भी नहीं किया। परन्तु आदि काव्य के उपर्युक्त उद्धरणों से देखा जा सकता है कि श्री भरतजी के ममाने भेजने में महाराज दशरथ जी की कोई राजनैतिक चाल नहीं थी।

महारानी श्री कैकेयी जी यदि देवमायाभिभूत न होगई होतीं तो मन्थरा के—

'पठये भरत भूप ननिऔंरे। राम मातु मत जानब रौरे॥'

इस कथन पर कभी विश्वास न करतीं, प्रत्युत इस कथन का प्रतिवाद ही करतीं क्योंकि श्री भरतलालजी ने तो माता से आज्ञा माँग कर मामा के साथ प्रस्थान किया था। अतः अब सम्भवतः आप अपने प्रथम क्यों का मतलब समझ गये होंगे कि भरत और शत्रुघ्न को ममाने क्यों भेज दिया और अब बुलाया क्यों नहीं? इस क्यों का मतलब श्री गोस्वामी जी की पंक्तियों के ही आधार पर सुनिये।

यौवराजत्व प्रदान की अत्युत्तमलग्न अत्यन्त ही सन्निकट काल में थी अर्थात् केवल एक रात्रि का ही अन्तर था। राजा ने गुरुजी से यहतो कहा ही नहीं था कि रामको कलही युवराज पद दिया जाय। कहा तो केवल इतना ही था कि—

'मोहिं अछत यह होइ उछाहू।'

परन्तु गुरु ने आज्ञा दिया कि—

बेगि विलम्ब न करिय नृप सजिय सबइ समाज।

और वह बेगि आज ही है, क्योंकि लग्न का दिन कल ही है। ऐसे ही सभी लोगों का कहना है है। देखिये लोग क्या कहते हैं—

श्री दशरथ जी—

प्रमुदित मोहिं कहेउ गुरु आजू। रामहिं राय देहु युवराजू॥

कहेउ भूप मुनि राजकर जोइ जोइ आयसु होइ।

रामराज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ॥

मंत्रीगण—बेगिहिं नाथ न लाइय बारा।

श्री गुरू जी—बेगि बिलंब न करिय नृप साजिय सबइ समाज।

"राम करहु सब संयम आजू।"

श्री कौशल्या जी—'कबहिं लगन मुद मंगल कारी'

"तात जाउँ बलि बेगि नहाहू।"

प्रजा गण—

घाट बाट अरु गली अथाई। कहहिं परस्पर लोग लुगाई॥

कालिह लगन भलि केतिक बारा॥'

मंथरा— 'रामहिं छाँड़ि कुसल किहि आजू।'

'रामहिं तिलक कालिह जौं भयऊ।'

"होइ अकाज आजु निसि बीते॥"

श्री कैकेयी जी—

'राम तिलक जौं साँचेहु काली।' 'जौं बिधि पुरब मनोरथ काली'

निष्कर्ष यह कि युवराज पद देने की सायत बहुत शीघ्र थी ऐसी सायत पुनः बहुत दिनों के बाद आती और क्षणभंगुर जीवन की आशा ही क्या? अतः इसी सन्निकट वाली उत्तम

दशरथ जी परम्परा से वैष्णव थे—

निजकुल इष्ट देव भगवाना ।

दशरथ तथा जनक ने शिवजी को भी सन्तुष्ट कर लिया था—

इन सम काहु न शिव अवराधे ।

इन सब कारणों से अपने सहायक मित्र उपासक एवं स्नेही के पुत्र के विवाह में देवराज इन्द्र, विष्णु, शिवादि प्रत्यक्ष जाते हैं, तो रावण या किसी भी राक्षस, दैत्य या असुर को श्री रामजी के मनुष्यातिरेक मानने में कोई कारण नहीं दिखाता—

(ग) धनुर्भङ्ग के बाद परशुराम आगमन होते ही कोई राक्षस परिवर्तित रूप से भी जनकपुर में ठहर नही सका—

जहँ तहँ कायर गवहिं पराने ।

तब रावण के पास जनकपुर के देवागमन का विवरण कौन देता ? रावण विरोधी देव मुनि मनुष्यादि तो रावण को सूचना ही क्यों देने लगे । जबकि रावण—

"हठि सबही कै पंथहिं लगा ।"

"त्रेता विविध यज्ञ नर करहीं ।"

(घ) वह यज्ञ का युग था, उस समय सात्विक लोग शुद्ध एवं सविधि वेद मंत्रों के उच्चारण पूर्वक सप्रेम देवावाहन करते थे जिससे कि—

सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं अशीष सब सुख पावहीं ॥

ऐसा प्रायः होता रहता था। विवाह में कई बार भिन्न-भिन्न

अवसरों पर देवावाहन पूजन होता था। अतः उसमें जब देवगण प्रत्यक्ष होते हैं तब रावण के हृदय में श्री रामजी को मनुष्यातिरिक्त मानने के लिये संकल्प विकल्प उठ ही नहीं सकते थे। ऐसे और भी अनेक कारण हो सकते हैं और सब सहेतुक। जिनमें अथवा का अवकाश नहीं। अस्तु देवता लोग अन्तर्हित होकर आशीर्वाद इसलिए देते हैं जिससे कि रावण वध तक श्री रामजी मनुष्य करके ही ख्यात रहें कि ये मानवेन्द्र दशरथ कुमार मनुष्य हैं तभी तो वे लोग आशीर्वाद देते हैं और—

तदपि देवि मैं देब अशीशा। सफल होन हित निज बागीशा॥

सफल होन हित आशिष देहीं॥

परन्तु देवता लोग ही क्या, कोई भी सत्पुरुष कभी भी अपनी वाणी मिथ्या नहीं होने देना चाहते और न अपनी शक्ति भर कोई अपनी वाणी मिथ्या होने देता है। देवता लोग यह जानते हैं कि वाणी कहाँ सफल होगी और कहाँ पर निष्फल जायेगी। अतः जहाँ आशीर्वाद के सफलीभूत होने में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है अपितु सफलता निश्चित रहती है वहीं तो—

सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं अशीश०।

"अन्तर हित सुर आशिष देहीं।"

और जब जानते हैं कि किसी प्रकार यह कार्य हो ही नहीं सकता अपितु उलटे—

विघ्न मनावहिं देव कुचाली॥

तिनहिं सुहाइ न अवध बधावा॥

इस उस सरकारी राज्याभिषेक की तैयारी के समय सम्यक प्रकार से पूजित होने पर भी किंच आगे के लिये निमंत्रित होने पर भी वरदान एवं आशीर्वाद नहीं देते हैं कि पूरा तो होगा ही नहीं किन्तु—

'राम जाहिं वनराज तजि होइ सकल सुर काज।'
'राम जाइ वन करि सुर काजू।'

और जब संपूर्ण देवकार्य पूरा कर लेंगे तब—

अचल अवधपुर करिहहिं राजू ॥ (मा०म० १६।१)

शंका ४

विमल बंश यह अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़े हि अभिषेकू ॥

'विमल बंश' कह कर बंश को निष्कलंक बताना और फिर उसमें एक अनुचित भी बताना, दोनों बातों का क्या समन्वय और यदि बड़े पुत्र को राज तिलककी यह कुल परम्परा अनुचित थी तो स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम ने ही क्यों उसे स्वीकार किया ? (जिवराखनलाल पांडे)

समाधान

वात्सल्यगुणपाथोधिं बंशमर्यादरक्षकम् ।
रामभद्रमहं बन्दे सर्वनीतिविशारदम् ॥

सतत काल से चला आता है कि सभी श्रेष्ठ लोगों की रीति नीति सिद्धांत, आचरणादि एक दूसरे से भिन्न हुआ ही करते

हैं। पूर्वकाल में कितने नीतिकार, धर्मशास्त्रकार, आन्हिककृत्य-कार पथ प्रदर्शक महाजन लोग हुये हैं। उन सबकी आज्ञा एक साथ ही कोई एक व्यक्ति पालन नहीं कर सकता अपितु किसी एक के ही निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण कर सकता है। परन्तु किसी एक धर्म शास्त्रकार की आज्ञा का अमुक अमुक अंश में पालन करने वाला व्यक्ति उसी अंश में दूसरे धर्म-शास्त्रकार की आज्ञा के विरुद्ध होते हुए भी बिपथगामी नहीं कहा जा सकता है, अतएव वह गर्हणीय नहीं हो सकता है। फिर भी लोक दृष्टि में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण की सदाज्ञा के बिपरीत एव क्षत्रिय की सदाज्ञा पर चलना नीति और धर्म के अनुसार तो नहीं पर लोक व्यवहार में अनुचिताभास हो सकता है। इसी तरह इस प्रसंग को समझना चाहिये।

भगवान् सूर्य के पुत्र श्राद्धदेव वैवस्वत मनु संसार के सभी क्षत्रियों के आदि पुरुष हैं। उन्होंने धर्मशास्त्र का भी प्रवचन किया है जो लोक में मानव धर्मशास्त्र के नाम से प्रख्यात है। उनका सर्वप्रथम वंश सूर्यवंश के नाम से लोक विश्रुत है, आगे चलकर सुद्यम्न (इला) के द्वारा चन्द्र वंश की नींव इसी सूर्यवंश से पड़ी। सूर्यवंश में भी इक्ष्वाकु, मान्धाता, सगर, ककुत्स्थ, रघु आदि परम प्रतापी अयोध्यानरेशों के कारण अयोध्यावाली परंपरा का सर्वोच्चस्थान रहा है। वहां के सभी व्यावहारिक कार्य यद्यपि कि ब्राह्मणधर्मशास्त्रकारों की आज्ञा-नुसार ही होते थे, परन्तु राजनीति में प्रधानता अपने पूर्व पुरुष की ही निर्धारित नीति की रहती थी—

जेष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ।

शेषास्तुमुपजीवेयुर्यथैव पितरस्तथा ॥ (मनु० ९।१०५)

मनु ने पिता के जीते पैत्रिक सम्पत्ति के संबन्ध में बड़े पुत्र भाई को ही स्वत्वाधिकारी (मालिक) होने का निर्देश किया है, और वही सूर्यबश में सदैव से प्रचलित भी था, श्री दशरथ-जी ने अपनी सफाई देते हुये कहा था कि—

'मैंबड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउँ नृप नीति ।'

श्री कैकेयी जी महारानी ने भी देव मायाभिभूत होने के पूर्व में यही कहा था कि—

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुलरीति सुहाई ॥

और देव मायाभिभूति होते हुए भी मन्थरा ने कहा था कि—

यहि कुल उचित राम कहँ टीका ।

अतः यह मानव धर्मशास्त्रकार की ही प्रचलित की हुई सूर्यबंश की कुल परम्परागत रीति नीति मर्यादा थी कि—

अनुज बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू ।

और नारद, याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, वृहस्पति आदि ब्राह्मण धर्मशास्त्रकारों का निर्देश है कि सम्पत्ति में सब भाइयों को बराबर बराबर भाग मिलना चाहिये ।

अत उर्ध्वं पितुः पुत्रा विभजेयुर्धनं । (नारद १३।३)

जीवन्पुत्रेभ्यो दायं विभजेत्समंसमम् । (आपस्तम्ब ध०१४।१)

क्रमागते गृहक्षेत्रे पिता पुत्रः समांशिनः ॥ (बृहस्पति)

यदि कुर्यात्समानंशान् पत्न्यः कार्याः समांशिकाः ।

(याज्ञवल्क्य स्मृति २।८।११५)

अतः मनु के मन्तव्यानुसार बड़े को अभिषेक होना अनुचित नहीं था। परन्तु परमब्रह्मण्य श्रीरामजी के ब्राह्मण धर्मशास्त्रकारों की आज्ञा के समक्ष इसे एक बड़ा अनुचित कहते हुए भी अनुचित न होने से पारम्परिक मर्यादा के कार्य-क्रम को पालन करनेके कारण श्रीरामजी का मर्यादा पुरुषोत्तमत्व अक्षुण्ण ही बना रहा।

जिस कार्यमें जो अभ्यस्त रहता है उसको रीति नीति मर्यादा आदि वही खूब अच्छी तरह जानता है। दूसरे लोग नहीं जानते। मनु राजा थे अतः जानते थे कि यदि सभी पुत्रों भाइयों में राज बँटा करेगा तो एक दिन परिवार बढ़ते-बढ़ते ऐसा भी हो सकता है कि बितस्ति मात्र भूमि न रह जाये। इसीसे उन्होंने जेठे को राज्याधिकारी नियुक्त किया है। परन्तु बनवासी बाबा लोगों ने शायद इसपर (सुदूर भविष्य तक) बिचार नहीं किया था। (मानसमणि २४।१)

शंका ५

दोहा—का नहिं पावक जारि सक, का न समुद्र समाय।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय॥

जब स्त्री अबला (बि ना बलकी) है तो का न करै, याने सबकुछ कर सकती है ऐसा क्यों लिखा है ? जिसका कुछ बल नहीं वह सबकुछ कैसे कर सकती है ?

तुलसीदास जी जिसको एक बार अबला लिखते हैं

उसीको दुबारा प्रबला याने बल वाली कैसे लिखते हैं ? एकही दोहे के एकही चरण में ऐसे दो विरुद्धार्थी शब्द कैसे लिखते हैं ? यह कहाँ तक न्याय संगत है ? (मन्नीलाल कटकवार)

समाधान

सद्धर्म भोगासन योग तुष्टांयुष्टां,
प्रमोदपरसां परमेश्वरीं ताम् ।
रामप्रियां रामहृदब्जसंस्थितां,
नित्यं नतो स्म्यखिलसौख्यप्रदांसुसीताम् ॥

शब्दशास्त्र के नियमानुकूल 'अ' निषेधार्थक अव्यय है और 'प्र' एक उपसर्ग है । 'अ' का प्रयोग किसी शब्द के आरंभ में प्रायः एक निश्चित् अर्थ को लेकर ही होता है, वह शब्द चाहे प्रातिपदिक हो और चाहे अप्रातिपदिक रहे । और उपसर्गों का प्रयोग किसी विशेषपद के अर्थ में विशेषता बोध कराने के लिये ही हुआ करता है । इस औपसर्गिक नियम को शब्द शास्त्र पारंगत महारथियों ने उदाहरण देकर समझाया है कि—

उपसर्गेण धात्वर्थो वलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहार संहार विहार परिहार वत् ॥

इस अबला शब्द का अव्ययार्थक 'अ' केवल वाह्य बल का निषेध करता है कि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा शारीरिक बल स्वाभाविक ही कम होता है यह एक नैसर्गिक नियम इतना परिपुष्ट सुदृढ़ है कि मनुष्य ही नहीं अपितु देव दैत्य पशु पक्षी सरीसृप यहाँ तक की स्थावर तक सभी की स्त्रियां (मादायें) पुरुषों (नरों) से शारीरिक बल में सदा से ही न्यून होती

आई है इसीलिये अर्थात् शारीरिक बल के न्यूनता के कारण स्त्रियाँ सर्वत्र अबला शब्द से व्यवहृत की जातीं हैं। यही बाह्य शारीरिक बल की न्यूनता को ही लेकर अन्य सुलेखकों, सुकवियों की तरह श्रीं गोस्वामी जी ने स्त्रियों को अबला लिखा है।

शारीरिक बल के अतिरिक्त, बुद्धि, चातुर्य, धैर्य, व्यवहार, रीति, नीति, न्याय, सौख्य, स्निग्धता, सौन्दर्य, स्नेह, दया, मया अहंता, ममता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, द्वेष, छल, कपट, हृदय की कठोरता, तनमन की कोमलता आदि सभी प्रकार के गुण औगुण स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा प्रायः अधिक ही पाये जाते हैं और यह नैसर्गिक नियम सार्वत्रिक एवं सार्वकालिक है। इसीसे अवसर विशेष पर स्त्रियों के लिये बल के साथ 'प्र' उपसर्ग लगाकर अर्थात् प्रबला कह कर अभियुक्तों ने स्मरण किया।

जो काम स्त्रियाँ शारीरिक बल से सिद्ध नहीं कर सकतीं उसे वे बुद्धि कौशल से सम्पन्न कर लेती हैं। अथवा ऐसा कहना चाहिये कि दैहिक बलाधिक्य के कारण ही पुरुष वर्ग किसी भी कार्य को प्रथम शारीरिक बल से साधन करना चाहता है, कायिक बल से वह कार्य न सिद्ध होने पर ही अन्य तर्क युक्ति सोचता है और स्त्रियां प्रत्येक कार्य साधन से सर्व प्रथम बुद्धि तर्क वाद को ही प्रश्रय दिया करती है।

सारांश यह कि स्त्रियों का शारीरिक बल पुरुषों की अपेक्षा कम होने से उन्हें अबला और पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों

के भौतिक ज्ञान तंतुओं (हृदय, मस्तिष्क) के सुदृढ़ होने से प्रबला कही जाना सर्बथा युक्ति युक्त है। इस तरह बिचार करने पर ज्ञात होने लगता है कि एक ही पंक्ति में एक ही साथ स्त्रियों को अबला पुनः प्रबला कहना बदतो व्याघत दोष नहीं अपितु सूक्ष्मतम तत्वान्वेषिक दृष्टि का परिणाम है। (मा० म० १०।६)

शंका ६

कैकेयी जी मंथरा से कहती हैं—

मोपर करहिं सनेह विशेषी। मैं करि प्रीति परीक्षा देखी॥

सो यह परीक्षा कब और कैसे ली गई ? (सबरस जबलपुर)

समाधान

बन्दौं श्री कैकेयि चरन, विष्णु भरत सुत जाहि।
निज जननी हू ते अधिक, राम लखे नित ताहि॥

श्री गोस्वामी जी ने कवितावली एवं गीतावली में संकेत किया है कि—

शिथिल सनेह कहैं कौशला सुमित्रा जू सों
मैं न लखी सौति सखी भगिनी ज्यों सेई है।
कहैं मोहि मैया, कहौं मैं न, मैया भरत की-
बलैया लैहौं भैया तेरी मैया कैकेयी है॥
तुलसी सरल भाय रघुराय जानी माय
काय यन बानी हू न मानि कै मतेयी है।
(कविता० २। ३)

कैकेयी जबलौं जियत रही।
मानों राम अधिक जननिहुँ ते जननिहु गस न गही॥
[गीतावली ७।३७]

निरन्तर साथ रहने पर तो आपको परीक्षा के मौके मिला ही करते हैं अतः पं० श्री विजयानन्दजी त्रिपाठीके शब्दों में "प्रीति परीक्षा के लिये किसी घटना विशेष की कल्पना करना व्यर्थ है।" (मा० म० १८।१०)

शंका ७

राखउँ सुतहिं करौं अनुरोधू। धर्म जाइ अरु बंधु विरोधू॥

बंधु विरोध से कौशल्या जी का क्या आशय है, क्या भरत जी और रामजी परस्पर राज्य के लिये लड़ पड़ते परन्तु-

"लोभ न रामहिं राज कर बहुत भरत पर प्रीति'।'
"भरत प्राण प्रिय पावहिं राजू।"
'मत तुम्हार यह जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुयश न लहहीं

देखने से तो अनुमान किया जाता है कि कौशल्याजी की धारणा भरत जी के प्रति ऐसी नही थी कि भरत जी राज्य के लिये श्री रामजी से विरोध करेंगे।

(डा० राजेन्द्र प्रसाद सिन्हा)

समाधान

गौरि गिरा गुरु गाय, गणप गदाधर गरुड़ भजि।
हर हनुमान सहाय, हेरि हर्ष हिय हुलस बड़ि॥

माता श्री कौशल्याजी को श्री भरत जी के विरोध करने का किंचित भी भय नही था। उन्हें तो श्री भरतलाल के कुल में परम लायक, सर्वश्रेष्ठ समझनेके लिए बार २ पतिकी आज्ञा थी—

बार बार मोहिं कहेउ महीपा। जानिहु सदा भरतकुल दीपा॥

और उन्हे स्वयं को भी यह निश्चित था कि भरत जो विरोध नहीं करेंगे। तभी तो बड़े दावे के साथ स्पष्ट रूपसे कहती हैं कि—

मत तुम्हार यह जो जड़ कहहीं। सो सपनेहु सुख सुगति न लहहीं

अतएव बन्धु विरोधू का यह तात्पर्य नहीं है कि भरतजी विरोध करेंगे। किन्तु इस शब्द का तात्पर्य यह है कि श्रीरामजी को बन जाने से रोकना उन्हें राज्य के लिये बन्धु के विरुद्ध खड़ा कर देना माना जावेगा। (मा० म० ७। १२)

शंका ८

कौशल्या ने राम से बिदा माँगते समय कहा—

राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न शोक दुख लेश।
तुम बिनु भरतहिं भूपतिहिं, प्रजहिं प्रचण्ड कलेश॥

इसमें भूपति के पहले भरत का नाम क्यों रखा, साधारण शिष्टाचार में भी लड़केसे पहले पतिका स्थान देना चाहिये और अपने ही लड़के के सामने कोई हर्ज नहीं था।

(जगन्नाथ प्रसाद विशारद)

समाधान

सदा रामानन्यैः परम प्रियजन्यैः परिवृतं,
परानन्दावाप्त्यै भुवनभरणाधारमनिशम्॥

दयाब्धिं शीलाब्धिं प्रणयपरमाब्धिं रसानिधिं,
स्मरे संगीतार्यं निखिलकवितार्चार्यभरतम् ॥

दोहे का अन्तिम शब्द ही बतला रहा है कि किस बात को लक्ष्य में रखकर यह दोहा कहा गया है। इस दोहे का लक्ष्य श्रीराम विरहियों के प्रचण्ड क्लेश की तरफ है। अर्थात् श्री-रामजी के विरह में जिसको जितना अधिक प्रचण्ड क्लेश भोगना पड़ेगा उसका नाम उसी क्रम से प्रथम रखा गया, अर्थात् श्रीरामजी के बनवास से सबसे अधिक कष्ट श्रीभरतजी को होगा, श्री भरत जी से कम श्री दशरथ जी को और राजा से कम प्रजाओं को। इसी से श्री भरत जी का नाम पहिले कहा और श्री रामजी भी तो पिता जी से अधिक भाई श्री भरत-लाल जी का संकोच मानते थे इसे श्री रामजी ने स्वयं स्वीकार किया है—

तासु बचन मेटत अति सोचू। तिहिते अधिक तुम्हार सँकोचू॥

और माता श्री कौशल्या जी खूब अच्छी तरह जानती हैं कि—

गूढ़ सनेह भरत मन माहीं।

इसी से तो श्रीमाता जी का हृदय बारम्बार चिंतित रहता है माताजी स्वयं कहती हैं कि—

मोरे सोच भरत कर भारी।

यही कारण है कि माता श्रीकौशल्याजी राजा से पहिले श्रीभरतलालजी के प्रचण्ड कलेशों का स्मरण करा रही हैं।

(मा२ म० ५ । ६)

शंका ९

कौशल्याजी ने कहा कि मैं जानकी को अब तक जिवन मूरि जिमि जोगवत रहेऊँ । दीप बाति नहिं टारन कहेऊँ॥ अयोध्या में वाती वाले दीपक का क्या काम था, दीपक बाति कैसी जब कि—

'मणिदीप राजहिं भवन भ्राजहिं ।' (श्रीकपीन्द्रजी रामायणी)

समाधान

अतीवमाधुर्यरसैकशालिनी, मनोमयी रामभुजांसमालिनी ।
मनोज्ञप्रोत्तुङ्गतरङ्गमालिनी, पुनातु मां साधकपुंजतारिणी ।।

यह सत्य है कि श्रीराम काल में श्रीअयोध्याजी में महार्घ मणियों की बाहुल्य होने के कारण कभी किसी को प्रकाशार्थ दीप जलाने की आवश्यकता नहीं होती थी, परन्तु धर्मशास्त्र की आज्ञानुसार नित्य तथा अमुक-अमुक समय पर दीप जलाना आवश्यक है । जैसे देव पूजन, अनुष्ठान, दीप-मालिका आदि । आप देखते हैं कि बड़े-बड़े भारतीय नगर में जहाँ कृत्रिम विद्युत प्रकाश रात को दिन बनाये रहते हैं वहां आज भी तत्तदवसरों पर धार्मिक हिन्दुओं के घर में घृत तैलादि के ही दीप जलाये जाते हैं बिजली के बल्व से धार्मिक कृत्यों में दीप का काम नहीं लिया जाता । कितने धार्मिक कार्य ऐसे होते हैं जिनमें घर के खास-खास व्यक्तियों से ही सहयोग लिया जाता है नौकरों या बाहरी लोगों से नहीं ।

वैदिक धर्मशास्त्र में लिखा है कि नित्य सायंकाल में दीप जलाना प्रत्येक गृहस्थाश्रमियों का कर्तव्य है और वहां पुरुषों का दीप निर्वापण दोष बतलाया गया है और वह दीप निर्वापण कार्य विना बाती टारे हुये हो नहीं सकता और वह बाती टार कर दीप निर्वापण कार्य कुल देवियों को ही करना चाहिये। देखिये यजुर्वेदीय आन्हिक सूत्रावली के अन्ह अष्टम भाग के कर्तव्य निर्देश का दीप प्रकरण।

पुरुषस्य दीपनिर्वापणे दोषः

दीपनिर्वापणात्पुंसः कूष्माण्डच्छेदनात्स्त्रियः।
अचिरेणैव कालेन वंशनाशो भवेद् ध्रुवम्॥
(शार्ङ्गधर पद्धतिः ६५१)

अयं च दीप निर्वापणे दोषः श्राद्धीयदीपातिरिक्तविषयः।
कुष्माण्डघातिका या स्त्री दीपनिर्वाणकः पुमान्।
सप्तजन्मभवेद्रोगी दरिद्रो जन्मजन्मनि॥
ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७५। ७६

दीपस्तुतिः—

दीपो ज्योतिः परंब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः।
दीपो हरतु मे पापं संध्यादीप ! नमस्तुते॥
शुभं करोतु कल्माणमारोग्यं सुखसम्पदम्।
शत्रुबुद्धिविनाशं च दीपज्योति नमोस्तुते॥

दीपकालः—

रवेरस्तं समारभ्य यावत्सूर्योदयो भवेत्।
यस्य तिष्ठेद् गृहे दीपस्तस्य नास्ति दरिद्रता॥

दीपगुणाः—

आयुर्दः प्राङ्मुखो दीपो धनदः स्यादुदङ्मुखः।
प्रत्यङ्मुखो दुःखदोऽसौ हानिदो दक्षिणामुखः॥
प्रत्यङ्मुखनिषेधस्तु नित्यदीपविषयः श्रीकार्तवीर्यादि
दीपः प्रत्यङ्मुख एवं स्थापनीयः॥

दीपलक्षणम्—

नेत्राल्हादकरः सार्चिर्दूरतापविवर्जितः।
सुशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नाति ह्रस्वकः॥
कोशजं रोमजं वस्त्रं वर्तिकार्ये न योजयेत्।
न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपं स्नेहे घृतादिकम्॥
कार्पासवर्तिका प्रोक्ता दीपकृत्येषु सर्वदा।
न चैव स्थापयेद्दीपं साक्षाद्भूमौ कदाचन॥

अतः प्रकाशार्थ नहीं अपितु स्वर्गाहस्थ्य धर्म पालनार्थ श्री अवधेश के राज सदन में दीप नित्य जलाया जाता था और उसका निर्वापण बाती उसकाकर (टार कर) निर्बापण कार्य गृहण ही कर सकती थी, परन्तु कभी भी श्री कौशल्याजी ने सुकुमारी सीता से उस अत्यन्त सुगमातिसुगम कार्य दीप निर्वापण कालीन वाती भी टारने केलिये अपने मुखसे नहीं कहा।

महामहोपाध्याय महामानसी श्री शिवलाल जी पाठक ने इस पर एक कथा का संकेत अपने मयङ्क और अभिप्राय दीपक में किया है कि—

शम्भर कृत उत्पात लखि नारद कहे बुझाइ ।
सियकर कमलनि वर्तिका दीपक मध्य नटाइ॥
(मानस अभिप्राय दीपक)

इस दोहे का स्पष्टीकरण यह है कि एक बार शम्भर नाम का बड़ा मायावी दैत्य अपनी माया से अदृश्य रह कर अयोध्या पर बड़े बड़े पत्थरों को बरसाया करता था, जिससे सभी अयोध्यावासी बहुत पीड़ित हुये तब श्री बशिष्ठ जी ने अवधेश के राज सदन के विशाल प्रांगण में एक मारण अनुष्ठान करना प्रारम्भ किया उसी समय नारद जी ने समझाकर कहा कि इस अनुष्ठान में जो मध्य का अखंड दीपक है उसका निर्वापण यदि श्री सीता जी करदें तो तुरन्त ही वह शम्भरासुर मर जाय ।

राजा प्रजा पर इतनी घोर विपत्ति होते हुए भी महाराणीश्री कौशल्या जी ने श्री सीता जी से नहीं कहा कि तुम दीप निर्वाणार्थ इसकी बाती टारो। उपरोक्त दोहे का संक्षिप्त अर्थ लिखते हुए दीपक चक्षुकार मानसी श्री स्नेहलता जी ने किन्हीं भास्कर का एक श्लोक लिखा है जिसका पूर्वार्द्ध यह है कि—

वर्तिकादीप मध्येतु लुप्ता मरति तत्क्षणात् ।

सभी जानते हैं कि सरसों आदि के तेल का दीपक यदि वायु देकर बुझा दिया जाता है तो कुछ देर तक उससे अप्रिय आती रहती है अतः बुझाने वाले को चाहिये कि जलती हुई बत्ती को टार (खिसका) कर तेल में डुबा दे, इससे दीपक

भी बुझ जाता है और दुर्गन्ध भी नहीं आती। इसी (बुझाते समय) बत्ती को तेल में डुबा देने का नाम निर्वापण क्रिया है।

मारण और उच्चाटन आदि (आभिचारिक) अनुष्ठानों से सरसों के तेल का ही अखण्ड दीपक जलाया जाय ऐसी तांत्रिक बिधि है। दैनिक दीप में भी सरसों के तेल के दीप का बहुत महत्व और आयुर्वेदानुसार गुण वर्णन है। (मा० ७।१)

शंका १०

श्रीरामजी बन जाते समय माता सुमित्रा जी से क्यों नहो मिले? (ब्र० सत्यव्रतजी बरहज)

समाधान

लखन कुमार रु शत्रुहन, अर्पित प्रभु पद कीन।
नमहुँ सुमित्रा मातु पद, जग अक्षय यश लीन॥

जो मालिक होता है उसकी आज्ञा सर्वोपरि होती है, छोटे-बड़े सबको मानना पड़ता है। रामायण काल में नियम था कि परिवार का सबसे बड़ी आयु वाला पुरुष घर के बाहर का मालिक होता था और घर के भीतर क्रमशः छोटी बहू मालि-किनी होती थी। इसी नियम से दशरथ के बाद रामजी मालिक होते और रामजी के बाद—

'कछु दिन गये भरत युवराजू।'

भरत जी मालिक बनाये जाते। राम जी के राजा होने पर दशरथ को भी राजाज्ञा माननी पड़ती और भरत जी के राजा हो जाने पर दशरथ एवं रामजी को भी उनकी आज्ञा

माननी पड़ती। इसी तरह महल में कौशल्या के बाद कैकेयी और कैकेयी के बाद सुमित्रा मालकिन थीं, अब सीता जी मालकिन होतीं। कौशल्या की आज्ञा अब कैकेयी काट सकती थीं, पर अब कैकेयी की आज्ञा कौशल्या नहीं काट सकती थीं और अब महल में सुमित्रा का शासन था वे सबकी आज्ञा काट सकती थीं पर उनकी आज्ञा महल में अकाट्य थी।

मालकिनी होने से ही सुमित्रा जी को प्रातःकाल से ही समस्त महल की देख रेख में व्यस्त रहना पड़ता था। इसी से तो प्रातः प्रणाम के लिये कौशल्या जी के पास जाने पर श्रीराम जी नित्य कौशल्या जी से पूँछते थे कि छोटी अम्बा कहाँ हैं।

बूझी हौं न विहँसि मेरे रघुबर 'कहँ री ! सुमित्रा माता ?'
(गी० २।५१)

राज परिवार में राजा के अतिरिक्त भी सभी पुरुषों को राज्य के अनेक विभागों में कार्य करना ही पड़ता था परन्तु महल में उतने विभाग नहीं होते थे अतः महल का पूरा सार-सँभार मालकिनी को ही करना पड़ता था। महल में छोटी रानी मालकिनी होती थी, सबसे बड़ी के जिम्मे दो काम होता था, एक तो इष्टदेवता एवं कुल देवता का पूजन करना कुलाचारानुरूप—

'निजकुल इष्टदेव भगवाना'। 'करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा।'
पूजी ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा॥

और दूसरा काम था आये हुये अतिथि, अभ्यागत, साधुओं,

ब्राह्मणों आदि का स्वागत सत्कार सेवा आदि करना(गी०१।१४)

अवध आजु आगमी इक आयो ॥

संग शिशु शिष्य सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो।

पाँय पखारि पूजि दियो आसन अशन बसन पहिरायो ॥

भूसुर वृन्द देखि बड़ि रानी। सादर उठी भाग्य बड़ि जानी ॥

और मध्य की मझिली सँझिली आदि को आनन्द करना तथा घर में बच्चे हों तो उनमें खेलना खेलाना बस—

'नींद बहुत प्रिय सेज तुराई, 'खाइय पहिरिय राज तुम्हारे'

'राज करत यहि दैव बिगोई।'

दशरथ जी के राज महल में इस समय सुमित्रा जी का शासन है इसीसे कैकेयी जी ने महल में न मांगकर अलग कोप भवन में बरदान माँगा था। तभी तो सुमित्रा जी ने कहा था—

पापिनि कीन्ह कुदाँय ॥

कौशल्या जी ने राम जी से कहा था कि—

जौ केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥

परन्तु मेरे बाद तुम्हारी मझिली माता कैकेयी मालकिनी रह चुकी हैं उनकी आज्ञा मुझसे अकाट्य है। अतः—

जो पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन शत अवध समाना॥

श्रीरामजी ने सूत्र पकड़ लिया कि छोटी अम्बा सुमित्रा जी इस समय मालिकनी-महल हैं, उनकी आज्ञा महल में सर्वोपरि है, उनसे मिलने जाने पर यदि उन्होंने कह दिया कि बेटा राम तुम महल से बाहर मत जावो जब तक मैं जाने की आज्ञा

न हूँ। तो फिर कोई शक्ति नहीं बन भेज सकती। इसी से श्रीराम जी ने बन जाते समय माता सुमित्रा जी से मिलना उचित नहीं समझा, अतः नहीं मिले।

शंका ११

श्रीरामजी की आयु विवाह के समय क्या थी, और बनवास के समय क्या थी? क्योंकि—

१—ऊन षोडश वर्षो में रामो राजीव लोचन॥ बा०रा० १।२०।२७
यह राजा दशरथ का कहना है। विवाह के समय पन्द्रह वर्ष; बाद बारह वर्ष के बनवास अतः बनगमन सत्ताइस बर्षमें।

२—सप्तदश च वर्षाणि जातस्य तव राघव।
अतीतानि प्रकांक्षन्त्या मया दुःख परिक्षयम्। (बा० रा० २।२०।४५) यह कौशिल्या का कहना है कि बनवास के समय राम की आयु सत्तरह बर्ष मात्र की थी।

३—उषित्वा द्वादशसमा इक्ष्वाकूणां निवेशने। (बा०रा३।४७।४)

मम भर्ता महातेजा वयसा पंचविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मानि गण्यते॥
(बा० रा० ३।४७।१०)

सीता के कहने से राम की आयु विवाह काल में तेरह वर्ष की थी।

४—विवाह-कौशिक यज्ञ रक्षण में राम ग्यारह बर्ष के थे ऐसा मारीच ने रावण से कहा था—

ऊन द्वादश वर्षोऽयमकृतास्त्रश्च राघवः। (बा०रा०३।३८।६

तो बनवास राम की तेइस वर्ष की आयु में हुआ था क्या ? मारीच का तो अनुमानमात्र हो सकता है, पर दशरथ, कौशिल्या और सीता इन तीनों में किसकी गणना ठीक है, और क्यों ?

(रामायणाचार्य जहूरी खाँ बी० ए०)

प्रकाशित सन् १६३२ ई० सितम्बर, सुल्तान गंज
भागलपुर की गंगा पूर्ण संख्या ५३ पृष्ठ १०२५

समाधान

राम राम रटि काटि दिय, द्विज हत्यादि अनन्त।
आदिकाव्य प्रगटे मनो, बाल्मीकि शुचि संत ॥

श्री राम चरित सम्बन्धी परम प्रमाणिक ग्रन्थ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण है तत्पश्चात् अध्यात्म रामायण और गो० श्रीतुलसी दास जी के ग्रन्थ हैं। इन तीनों में कथानकमें भले ही कुछ हेर-फेर हो परन्तु मूलतथ्य में मतभेद प्रायः नहीं ही है। विवाह के समय श्रीराम चारों भाइयों की अवस्था क्या थी। एवं श्री सीता जी चारों बहिनों की अवस्था क्या थी ? इसका यद्यपि वर्ष महीना दिन आदि का स्पष्ट उल्लेख किसी में नहीं है परन्तु संकेत तीनों में है कि विवाहके समय चारो युगल पूर्ण युवावस्था-पन्न थे। प्रथम बाल्मीकीय रामायण को देखें। श्री सीता जी ने अनुसूया जी से बताया था कि—

१ –पति संयोगसुलभं, वयोऽवीक्ष्य पिता मम।
चिंतामभ्यगमद्दीनो, वित्तनाशादिवाधनः॥ वा०रा०२।११८।३४

अन्यत्र—

२—अभिवाद्याभिवाद्यांश्च, सर्वाराज सुतास्तदा।
रेमिरे मुदिताः सर्वा, भर्तृभिर्मुदिता रहः॥
कुमाराश्च महात्मानो, वीर्येणाप्रतिमाभुवि॥
(बा० रा० १।७७।१४)

३—रामश्च सीतया सार्द्धं, बिजहार बहूनृतून्।
(बा० रा० १।७७।२६)

अध्यात्म रामायण देखें—

१—सीतास्वर्णमयीमाला, गृहीत्वा दक्षिणे करे।
स्मितवक्त्रभा स्वर्णवर्णा, सर्वाभरणभूषिता॥
मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चलितनूपुराः।
दुकूलपरिसंवीता, वस्त्रान्तर्व्यञ्जतस्तनी॥
रामस्योपरि निक्षिप्य, स्मयमाना मुदं ययौ॥
(अ० रा० १।६।२६, ३०, ३१

२—रामलक्ष्मणशत्रूघ्नभरतादेव सम्मिता।
स्वां स्वांभार्यामुपादाय, रेमिरे स्व स्व मन्दिरे॥
(अ० रा० १।७।५२)

३—मातृपितृभ्यां संहृष्टो, रामः सीता समन्वितः।
रेमे वैकुण्ठभवने, श्रियासह यथा हरिः॥(अ०रा० १।७।५३)

श्री गो० तुलसीदास जी महाराज का कहना देखें।

१ – नृप लखि कुँवरि सयानि वोलि गुरु परिजन।
करि मत रचेउ स्वयम्वर धरि धनु पन ॥ (जानकी मंगल ८)
२ – रूपराशि जिहि ओर सुभाय निहारइ।
नीलकमल शरश्रेणि, मदनजनु मारइ ॥ (जानकी मंगल६२)
३ – राम दीख जब सीय सीय रघुनायक।
दुहुँ दिशि तकि तकि, मदनसुधारत शायक ॥ (जा० मं० ६४)
४ – रामसीयवयसमो सुभाय सुहावन।
नृपयोवन छवि पुरइ चहत जनु आवन ॥ (जा० मं० ६६)
५ – शोभा शील सनेह सुहावन समय केलिगृह गवने ॥
(गीतावली बा० का० १०७)

६ – जो पटतरिय तीय सम सीया।
जग अस युवति कहाँ कमनीया ॥
रा० च० मा० १।२४७/४

७ – अनुरूपवरदुलहिनि परस्पर…(रा० च० मा० १।३३५ छं०४
'पति संयोग सुलभंवयः" 'रेमिरे मुदिताः सर्वाः'
'सीतायासार्धं विजतार' 'स्मितवक्त्रा' व्यंजितस्तनी'
'स्मयमाना' रेमिरे रेमे कुँवरि सयानि मदन सुधारतशायक
नीलकमलशरश्रेणिमारइ रामसीय वय सम नृपयौवन-
पुरइ, व्याह के दिन ही केलि गृहगवने 'असयुवति' आदि
प्रमाण समूह बता रहे हैं कि विवाह के समय सीता जी चारों
बहिनें युवती थीं। विवाह की पति संयोग की अवस्था आ

चुकने के कारण ही जनकजी बहुत चिंतत रहा करते थे।

चिंतामभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः।

(बा० रा० २।११८।३४)

व्यंजितस्तनी युवती और व्याह होते ही रेमिरे रेमे विजहार केलिगृह गवने आदि सबका लक्ष्य छः वर्ष की दुधबालिका से नहीं अपितु युवती से है। आरण्यकाण्ड में वर्णन है कि परिव्राजक वेषधारी रावण के पूँछने पर श्रीसीता जी ने अपना परिचय देते हुए कहा था कि—

दुहिता जनकस्याहं, मैथिलस्य महात्मनः
सीतानाम्नास्मि भंद्र ते, रामस्य महिषी प्रिया ॥३॥
मम भर्ता महातेजा वयसा पंचविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्माति गण्यते ॥४॥
उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निबेशने।
भुञ्जातां मानुषान् भोगान् सर्वकाम समृद्धिनो ॥५॥
तत्र त्रयोदशे वर्षे राजा मन्त्रयतः प्रभुः।
अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमंत्रिभिः ॥६॥

(वा०रा० आरण्य काण्ड सर्ग ४७)

'मम भर्ता महातेजा' श्लोक पूर्वापर के सम्बन्ध से इसी सर्ग का चौथा श्लोक होना चाहिए। संभवतः टीकाकारों से बहुत पहले किसी सभ्य प्रतिलिपि कार की असावधानी से चौथे की जगह दशवां हो गया है और तभी से उपर्युक्त प्रमाणों के विरुद्ध बिवाहकाल में सीताजी ६ वर्ष की दुधमुही बालिका थीं,

ऐसी अनर्गल परम्परा चल पड़ी और शायद ऐसे अक्षर प्रेतों के मत से माण्डवी पांच उर्मिला चार श्रुतिकीर्ति तीन वर्ष की रही हों क्योंकि माण्डवी सीता जी से छोटी उर्मिला से बड़ी थी श्रुतिकीर्ति सबसे छोटी थी तीन से ६ वर्ष तक की बालिकायें अनुरूप वर दुलहिन 'रेमरे' 'रेमे' और उन्हें लेकर केलिगृह गवने कहने वालों की जिह्वा क्यों नही गल जाती। अतः विवाह

रामजी की आयु पचीस वर्ष की थी और सीताजी की आयु अठारह वर्ष की। जोथी भावनामें बहकर मेरे इस लेख का खण्डन करना चाहें तो उन कोरे भावुकों, अक्षर प्रेतोंसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि–'भूतलादुत्थिता सीता' की तरह माण्डवी, उर्मिला,श्रुतिकीर्त्ति नहीं थी। वे तीनों तो पिता के औरस से माता के गर्भ से जायमाना थीं, इसका व्यवहारिक विचार कर लेवेंगे। अस्तु

साकेत सुषमा में वर्णन है कि–

षोडशाब्दपरिच्छिन्ना वयः सोऽपि भयापहः।

(शिवसंहता पटल ५ अध्याय ४)

श्री अग्रदास जी महाराज ने इसी श्लोक के आधार पर ध्यान मंजरी में–

'षोडश वर्ष किशोर राम नित सुन्दर राजैं ॥४७॥

कहा है और इसी भाव से गो० श्रीतुलसीदासजी ने भी गीतावली में बनवास के समय भी किशोर ही कहा है कि–

चित के चोर वय किशोर लोचन भरि जोऊ॥

(गी० २। १६)

वय किशोर सरिवार मनोहर वयस शिरोमणि होने ॥२३॥
थोरे ही वयस गोरे साँवरे सलोने लोने ॥ २० ॥

शारीरिक गठन सोलह अठारह बर्ष के नित्य किशोर होने से ही अपरिचित लोगों को देखने पर अल्पवयस का बालक होने का भ्रम हो जाया करता था। विश्वामित्र के यज्ञ में तो मारीच को भ्रम हो ही गया था कि रामलक्ष्मण ग्यारह बर्ष के बालक ही हैं।

ऊन द्वादश वर्षोऽयमकृतास्त्रश्च राघवः ॥ बा० रा० ३।३८।६

जिस तरह टीकाकारों ने महारानी कौशिल्या के—

दशसप्त च वर्षाणि जातस्य तव राघव।
अतीतानि प्रकाङ्क्षन्त्या, मम दुःखपरिक्षयम् ॥
(बा० रा० २।२०।४५)

इस बचन में आये "सप्तदश च बर्षाणि जातस्य" का अर्थ उत्पत्ति (प्राकट्य) काल से न लेकर टीकाकारों ने व्रत बंध काल से लिया है।

अत्र जातस्येत्युक्तिः द्वितीय जन्मापेक्षया गर्भैकादशेतु राजन्यम्। इति बहुवचने गर्भनवममारभ्य, क्षत्रियस्योपनयनकालत्वोक्ते (भूषण) "उपनयनं च गर्भैकादशे" "एकादशे वा राजन्यम्"।
त स्मृतेर्दशमे बर्षे इति बोध्यम्।
एवमुपनयनोत्तरं सप्तदश बर्षाण्यतीतानि जातस्य तव०
(रामाभिरामीय तिलक)

जन्म से उत्पत्ति (प्राकट्य) काल से नहीं लिया तो भी

पच्चीस बर्ष न होकर सत्ताइस वर्ष हुआ। बालकाण्ड के दशरथ के बचनों में आये हुये—

ऊन षोडशबर्षो मे रामो राजीवलोचनः। (बा०रा०१।२०।२)

में दश बर्ष में ब्रतबन्ध से अबतक पन्द्रह बर्ष अर्थ करने से "वयसा पंचविंशकः" विवाहकाल में पच्चीस बर्ष का सम्बन्ध बैठ जाता है। हो सकता है कि जैसे बा० रा० ३।४७।१० का समन्वय करने के लिये कुछ टीकाकारों ने पंचविंशकः को सप्तविंशकः कर दिया है, वैसे 'दशपंच च बर्षाणि' को 'सप्तदश च बर्षाणि' कर दिया हो। महामहोपाध्याय श्री नागेशजी भट्ट ने तो रामाभिरामीय तिलकमें एक और कारण दिया है कि-

कौशिल्यायाः पुत्रवियोगदुःखार्ततया०।

तात्पर्य यह कि भावी पुत्र वियोग के दुःख से आर्त होने के कारण कौशिल्या जी के मुख से "सप्तदश च बर्षाणि" निकला अन्यथा कुछ और निकलता। निष्कर्ष यह कि विवाह के समय रामजी की आयु पच्चीस बर्ष की और सीताजी की अठारह बर्ष की थी। तथा बन जाते समय रामजी की अवस्था सैंतीस बर्ष और सीता जी की अवस्था तीस बर्ष की थी।

उषित्वा द्वादशसमा इक्ष्वाकूणां निवेशने।

बा० रा० ३।४७।५

श्रीरामजी का बनवास चैत्र शुक्ला नौमी को उनके जन्म दिन को हुआ था। वैसे कुछ लोग कहते हैं कि नौमी रिक्ता तिथि है अतः दशमी को राज्याभिषेक का निश्चय किया था

और चैत्र शुक्ला दशमी को ही बनगमन हुआ था। परन्तु यह कथन इसलिए ठीक नहीं है कि एक तो नौमी का जन्मकाल था दशमी को नहीं। दूसरे पुष्य नक्षत्र में रिक्ता आदि का दोष नहीं होता। यथा—

न योग योगं न च लग्न लग्नं, न तारका चन्द्रबलं गुरोश्च।
योगिन्यराहुर्न तथैवकाले, सर्वाणि कार्याणि करोति पुष्यः॥
(आनन्द रामायण यात्राकाण्ड ४।८)

अस्तु। चैत्रः श्री मानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः।
यौवराज्याय रामस्य सर्वशेषोपकल्प्यताम्॥
(बा०रा० २।३।४)

राघवस्याभिषेकार्थे, प्रीयमाणः सुसंगता।
उदिते विमले सूर्ये, पुष्ये चाभ्यागतेऽहनि॥
लग्ने कर्कटके प्राप्ते जन्मरामस्य च स्थिते।
अभिषेकाय रामस्य, द्विजेन्द्रै रुपकल्पितम्॥
(बा०रा० २।१५।३-४)

चैत्र शुक्ला अष्टमी की रात में मझली महारानी ने वरदान माँगा और नौमी के पुष्य नक्षत्र में श्रीरामजी ने बन के लिए प्रस्थान किया और उस दिन पहली रात तमसा तीर निवास हुआ।

गोकुलाकुलतीरायास्तमसाया विदूरतः।
अवसतत्र तां रात्रिं, रामः प्रकृतिभिः सह॥
(बा० रा० २।५४।१७)

दूसरे दिन अर्थात् दशमी को शृङ्गबेरपुर पहुँचे।

आससाद महाबाहोः श्रृंगबेरपुरं प्रति। (बा०रा०२।५०।२६)

उस रात्रि वहीं निवास हुआ।

तिष्ठतो राजतुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत् ॥बा०रा० २।५१।२६

तीसरी रात्रि एकादशी को श्रृंगबेरपुर और प्रयाग के मध्य बत्सदेश में बट वृक्ष के नीचे विश्राम हुआ।

क्रमेण बत्सान् मुदितानुपागमत् ॥(बा०रा० २।५२।१०१)

न्यग्रोधे सुकृतां शय्यां भेजाते धर्मवत्सलौ ॥ बा०रा०२।५३।३३

चौथी रात्रि को प्रयागस्थ भरद्वाजजी के आश्रम पर रहे।

भरद्वाजाश्रमे रम्ये तां रात्रिमवसत्सुखम् ॥बा०रा०२।५४।३५

पाँचवीं रात्रि त्रयोदशी को यमुनापार श्यामवट के नीचे निवास किया।

श्यामं न्यग्रोधमासेदुः शीतलम् हरितच्छदम् ॥

(बा० रा० २। ५५। ३३

समंनदीव प्रमुपेत्य सत्वरं निवासमाजग्मुरदीनदर्शनाः

(बा०रा० २।५५।३३)

छठवें दिन चतुर्दशी को बाल्मीकि मिलन घोर बन में (राम शय्यापर) रात्रि निवास। चैत्रपूर्णिमा को चित्रकूटमें उजट निर्माण एवं निवास। बैशाख के अन्त तक भरतजी का चित्रकूट आना और वापस लौटना आदि। चैत्र पूर्णिमा से भाद्रपद तक पावस भर पाँच मास तक चित्रकूट में रामजी ने निवास किया आश्विन में अत्रि आश्रम होकर सुतीक्ष्णाश्रम पर और आगे इसी के आस पास थोड़ा बहुत करके दश वर्ष व्यतीत किया।

संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै।
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश ॥ बा०रा० ३।११।२६

ग्यारहवें वर्ष पुनः सुतीक्ष्ण के आश्रम पर आकर अगस्त्य के आश्रम पर जाने के लिए प्रस्थान किया। रात्रि में एक रात्रि अगस्त्य के भाई के आश्रम पर रह कर तब अगस्त्य के के पास गये और वहाँ से जाकर पंचवटी में उटज निर्माण कर के रहने लगे। सम्भवतः पञ्चवटी में रह जाने पर बनवास की तेरहवीं साल की समाप्ति होते होते सूपर्णखा का विरूपीकरण खरदूषण युद्ध एवं सीताहरण आदि काण्ड हुये। सीता हरण सम्भवतः मार्ग शीर्षान्त अथवा पौषारम्भ में हुआ था। रावण ने अशोक बाटिका में सीता को एक वर्ष का समय दिया था।

शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान् द्वादशभामिनि।
कालेनानेन नाभ्येषि, यदि मां चारुहासिनि॥
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः॥
बा०रा० ३।५६।२४,२५

सीता जी को खोजते हुए दोनोंभाई ग्रीष्मान्त में किष्किन्धा पहुँचे वहाँ सुग्रीव से मैत्री बालिबध और सुग्रीव को राज देकर वर्षा ऋतु श्रावण भाद्रपद भर प्रवर्षण गिरि ऋष्यमूक पर रह कर प्रथम आश्विन में बानरों को चारों ओर सीतान्वेषणार्थ भेजा था। वह समय हनुमान अङ्गदादि को समुद्र तट तक पहुँचते ही बीत गया।

युवराजो महाप्राज्ञः अंगदो वाक्यमब्रवीत्।
शासनात् कपिराजस्य, वयं सर्वे विनिर्गताः॥

मासः पूर्णो विलस्थानाम् हरयः किं न बुध्यत ।
वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्या व्यवस्थिताः ॥
प्रस्थितः सोऽपि चातीतः किमतः कार्यमुत्तरम् ॥

वा०रा० ४।५३।७,८,९,

द्वितीय आश्विन के आरम्भ में हनुमान लंका पहुँचे तब सीता जी ने उनसे कहा कि—

अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवनम् ॥
वर्तते दशमो मासो, द्वौ तु शेषो प्लवंगम ।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥

(वा० रा० ५।३७।७,८)

परन्तु तुम श्री राम जी से कह देना कि मैं रावण के हाथ से मरना नहीं चाहती अतः मैं केवल एक मास तक ही आपकी प्रतीक्षा करूँगी, यदि एक मास में आप नहीं आये तो मैं एक मास बाद शरीर त्याग दूँगी, ऐसा मैं सत्य की शपथ खाकर कहती हूँ—

इदं ब्रूयाश्च मे नाथं, शूरं रामं पुनः पुनः ।
जीवितं धारयिष्यामि, मासं दशरथात्मज ॥
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं, सत्येनाहं ब्रवीमिते ॥

वा० रा० ५।३८।६४,६५

दूसरे आश्विन में लंका पर चढ़ाई हुई । जहाँ मनुष्य को किष्किन्धा से गामांतक=गावा क्षेत्र के पास समुद्र तक पहुँचने में अनेक दिन लगते वहाँ हनुमान और अंगद ने अपने २ कंधे पर

राम लक्ष्मण को लेकर कूदते फाँदते बानर समूह के साथ शीघ्र ही पहुँच गये। बानर बाहिनी को कवच टोप, वर्दी, साफा, शस्त्रास्त्र तथा भोजन की व्यवस्था आदि करनी ही नहीं थी। जिस दिन समुद्र तट पर पहुँचे उसी दिन बिभीषण भी आकर मिले। तीन दिन के सत्याग्रह पश्चात् भय प्रदर्शित करने पर—

ततो मध्यात् समुद्रस्य सागरः स्वयमुत्थितः ॥

समुद्र ने नल नील की बात बताई, तो नल नील ने समस्त बानरों की सहायता लेकर पाँच दिन में एक सौ योजन लम्बा दस योजन चौड़ा पुल तैयार कर दिया। जिससे शीघ्र ही लङ्का के सुवेलगिरि पर पहुंच गये। बा० रा० ६। २२। जिस तिथिको सुवेल पर पहुँचे वह द्वितीय आश्विन की पूर्णिमा थी

पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च क्षपा समतिवर्तत ॥बा०रा० ६।३८।१६

उसी रात्रि सुग्रीवने रावण से पहली कुश्ती लिया (बा०रा०६।४०) दूसरे दिन कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा को अंगद का दौत्य ॥बा०६।४१ कार्तिक कृष्ण द्वितीया से युद्धारम्भ, कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को मेघनाद मारा गया।

उसी रात रावण के सुपार्श्व नामक मंत्री ने रावण से कहा कि आज कृष्णा चतुर्दशी है, कल अमावस्या से आप युद्ध करें।

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशी।
कृत्वा निर्याह्यमावास्यां, विजयाय बलैर्वृतः ॥
बा०रा० ६।६२।६६,

कार्तिक अमावस्या से राम रावण युद्ध शुरू हुआ उस अठारहवें दिन मार्गशीर्ष कृष्णा द्वतीया को रावण मारा गया। रामाभिरामी तिलककार ने यु० का० सर्ग १०८ श्लोक ३४ की टीका में लिखा है कि –

अष्टादशदिने रामो द्वैरथे रावणं बधीत् ॥

मार्गशीर्ष कृष्णा तृतीया को रावणादि का अग्निसंस्कार हुआ चतुर्थशी को लंका [illegible] वभीषण का राज्याभिषेक हुआ ! पंचमी को श्री रामजी पुष्पक से प्रयाग में भरद्वाजाश्रम पर पहुँचे।

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पंचम्यां लक्ष्मणाग्रजः
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥
(वा०रा० ६।१२४।१)

उसी दिन हनुमान जी ने जाकर भरत जी से कहा था कि कल प्रातः पुष्य नक्षत्र में श्री रामजी यहाँ आ जायेंगे।

तां गंगा पुनरासाद्य, वसन्तं मुनिसन्निधौ।
अविघ्नं पुष्ययोगेन, श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि ॥
वा०रा० ६।१२६।५४

महाभारत में एक नियम वतलाया गया है कि वनवास कालिक वर्ष तीन सौ साठ दिन का बर्ष गिना जाता है और प्रति पाँच वर्ष में साठ दिन का दो अधिक मास होता है देखिये महाभारत विराट पर्व अध्याय ५२ श्लोक ३–

पञ्चमे पञ्चमे बर्षे द्वौ मासावुपजायते ॥

इस गणना से चौदह वर्ष में पाँच मास और कुछ दिन कम

हो गये, अर्थात् तेरह बर्ष छः महीना और कुछ दिन ही में वन-वास का चौदह बर्ष पूरा होगया। चैत्र शुक्ल नौमी पुष्य नक्षत्र में बन हुआ था वह मार्गशीर्ष कृष्णा षष्ठी पुष्य नक्षत्र को पूरा होगया। आज भी चैत्र शुक्ला नौमी से एकादशी तक में पुष्य नक्षत्र पड़ता है और मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी से सप्तमी तक भी पुष्य नक्षत्र पड़ता है।

यह गणनाभाव अयोध्या काशी की प्रणाली पर है, महा-राष्ट्र, गुर्जर प्रणाली पर नहीं। अस्तु बाल्मीकीय रामायण के साथ संश्लिष्ट उत्तर काण्ड से भी यही तथ्य निश्चित होता है, क्योंकि लङ्का के आये हुये राक्षसों और बानरों को अयोध्या रहते हुये एक मास से अधिक समय बीता तब शिशिर ऋतु का दूसरा मास (पौष) समाप्त हुआ तब उनकी बिदाई हुई, वे अपने अपने घर गये—

देखिये उत्तरकाण्ड सर्ग ३६ श्लोक २७ से ३० तक

एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा ॥२७॥
राक्षसैश्च महावीर्यैर्ऋक्षैश्चैव महाबलैः ॥२८॥
एवं तेषां ययौ मासो, द्वितीयः शिशिरः सुखम्।
वानराणां प्रहृष्टानां, राक्षसानां च सर्वशः ॥२६॥
इक्ष्वाकु नगरे रम्ये परां प्रीतिमुपासताम्।
रामस्य प्रीति करणैः, कालस्तेषां सुखं ययौ ॥३०॥

आगे उत्तरकाण्ड सर्ग ४० श्लोक ३० में भी देखिये

कृतप्रसादस्तैनैवं राघवेण महात्मना।

जग्मुः स्वं स्वं गृहं सर्वे, देहो देहमिव त्यजन् ॥३७॥

यह ठीक है कि प्रतिबर्ष बैशाख शुक्ला पंचमी से सप्तमी तक, ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी से सप्तमी तक, कार्तिक कृष्णा पंचमी से सप्तमी तक और मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी से कृष्णा सप्तमी तक पुष्य नक्षत्र पड़ता है, परन्तु चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और कार्तिक के बाद कुछ अधिक एक मास में ही शिशर ऋतु नहीं आ जाता, और उन महीनों की तिथियों को चौदह बर्ष भी ब्यतीत नहीं हो जाता। इससे निश्चित है कि मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को भरद्वाजाश्रम पर पहुँचना षष्ठी को पुष्य नक्षत्र में अयोध्या पहुँचना तथ्य है।

शंका १२

सुमन्त्र मन्त्री थे या सारथी या दोनों—क्योंकि बनगमन के समय सारथी का संकेत सुमन्त्र के लिये ही हुआ है और लौटते समय या प्रसंग में कहीं भी सारथी का नाम निर्देश नहीं है तो क्या राजा दशरथ जी के यहाँ सारथियों की कमी थी या इस काम के लिये सुमन्त्र को ही सारथी बनाकर भेजा गया था। सप्रमाण समाधान करें। (—'सबरस' जबलपुर)

समाधान

सीयपदाम्बुजजे नख राजित, जे नखराजित माणिक चोरैं।
चिन्ततही मन चिन्तमणीन सुवैभव आनि सजावत धोरैं॥
माँगन चाह मिटाइ महानिर्वाणहुँ से जन को मन मोरैं।
श्रुति शास्त्र अनन्त अनन्त प्रभाव, बताव 'कुमार' कुमारग छोरैं॥

राजशास्त्र राजनीति तो वेदान्तादि दर्शन शास्त्रों से कहीं अधिक गहन है और यह तो बहुत प्रसिद्ध बात है कि—

राजकि रहै नीति बिनु जाने ॥

राजा के लिये नीति है कि—

बहुभिर्मंत्रयेत् कामं राजा मंत्रं पृथक् पृथक् ।
मंत्रिणामपि नो कुर्यात् मंत्र मंत्रप्रकाशनम् ॥
(मत्स्यपुराण)

परन्तु कुछ ऐसी भी मन्त्रणा (सलाह) की आवश्यकता होती है जिसे राजा एवं प्रधान मन्त्री के अतिरिक्त तीसरा कोई कार्य सिद्ध हो जाने के अथवा दृढ़ रूपेण प्रारम्भ हो जाने के प्रथम जानने ही न पाये—

षट् कर्णौं भिद्यते मंत्रश्चतुष्कर्णश्च धार्यते ।
द्वि कर्णस्य तु मंत्रस्य ब्रह्माप्येको न बुध्यते ॥
(गरुड़ पुराण अ० ११४ । ५४)

इसलिये राजा को चाहिए कि प्रधानामात्य को साथ लेकर घोर बन (एकान्त निर्जन जंगल) में अथवा लम्बे चौड़े मैदान (ऊसर गाठा किंवा सहारा रेगिस्तान) में जहाँ दूर तक चारों तरफ दिखाई देता रहे ऐसे निःशलाक स्थान में जाकर मन्त्रणा (सलाह) करे और दिन में ही ऐसी सलाह के लिए एकान्त या निःशलाक स्थान में जावे, रात्रि में किसी तरह नहीं—

सुसंवृत्तं मंत्रगृहं स्नानं चारुह्य मंत्रयेत् ।
आरण्ये निःशलाके वा न च रात्रौ कथंचन ॥
(विश्वकोश)

अब सोचिये कि ऐसा कैसे हो सकता है ? तो इसीलिए राजा को प्रधान मंत्री को साथ में लेकर दूर एकान्त-घोर निर्जन बन अथवा लम्बे चौड़े मैदान में जाना चाहिये। उस समय मन्त्री ही राजा का सारथी, अंगरक्षक, सेवक, सखा आदि सब कुछ रहता है। इसलिए महाभारत शान्ति पर्व राजधर्मानुशासन पर्वके पचासीवें अध्याय में युधिष्ठिरके पूँछने पर बड़े विस्तार के साथ मंत्री का लक्षण बताते हुए भीष्म ने कहा कि—

१ २
अष्टभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा ।
३ ४ ५
पंचाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमनुसूयकम् ॥ ९ ॥
६ ७ ८
श्रुतिशास्त्रसमायुक्तं विनीतं समदर्शिनम् ॥ १० ॥
अष्टानां मंत्रिणां मध्ये मंत्रं राजोपधारयेत् ॥११॥

इन आठ गुणों में सूत-सारथी भी होना चाहिए [सूत एक वर्णशङ्कर-उपजाति को भी कहा जाता है और सारथी को भी] कोशकारों ने बताया है कि—

सूतस्तु सारथौ तक्षिण – (विश्वकोष मेदिनीकोष)
सारथिरुच्यतेसूतः—(अमरमालाकोश)
नियन्ता प्राजिता यन्ता सूतः क्षता च सारथिः ॥
(अमरकोश)

प्रधानामात्य के पक्ष में सूत का अर्थ सारथ्य विद्या में कुशल ही होगा (वर्णशंकर उपजाति नहीं) क्योंकि सूत का श्रुति (वेद) में अधिकार नहीं और यहाँ 'श्रुतिशास्त्र समायुक्त' कहा गया है। दूसरे प्रधानामात्य ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य वर्ण वाला व्यक्ति बनाया नहीं जाता—

सर्वलक्षणलक्षण्यो मंत्री राज्ञस्तथा भवेत्।
ब्राह्मणो बेदतत्वज्ञो विनीतः प्रियदर्शनः॥
(विष्णु धर्मोत्तर)

द्वि जन्मानो हि ब्रह्मतेजसो वंदनीया पूज्या एव।
मंत्रि पुरोहित पदे स्थापयितुमुचिता भवन्ति॥
(उदय सुन्दरी कथा)

ब्राह्मणो मंत्रणाभिज्ञो राजनीतिविशारदः।
नानालिपिज्ञो मेधावी नानाभाषासमन्वितः॥
(शब्दकल्पद्रुम)

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता।
मंत्रयेत् परमं मंत्रं राजा षाड्गुणसंयुतः॥
(मनुस्मृति ७। ५८)

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम्।
तदा नियुँजाद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने॥
(मनु० ८। ६)

धर्म प्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथंचन॥ २०॥
आमात्यं मुख्यं धर्मज्ञं दान्तं शुचिकुलोद्भवम्।

स्थापयेदासने तस्मिन् खिन्ने कार्येक्षणे नृणाम् ।

इत्यादि प्रचुर प्रमाण है कि प्रधानमन्त्री ब्राह्मण ही हो यद्यपि मन्त्रिमण्डल में क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि भी अवश्य रहें। अस्तु

प्रधान मन्त्री ही समय विशेष पर राजा का सारथी, सेवक, सखा अङ्गरक्षक सभी बना करै इसीलिये प्रधान मन्त्री को परिच्छेदी [शिल्प कुशल] होना चाहिये जिससे राजा को एकान्त में ले जाने पर यदि दैवात् कभी रथ में कोई खराबी आ जाय तो उसकी मरम्मत भी करले। यथा—

मंत्री भक्तः शुचः धीरोऽनुकृतो बुद्धिमान् क्षमी ।
आण्वीक्ष्यादिकुशलः परिच्छेदी सुदेशजः ॥
मंत्री पंचांगता शक्तिषाड्गुण्योपाय सिद्धयः ।
उदयाश्चिन्तनीयाश्च स्थैर्योन्नत्यादि सूक्तयः ॥
[कवि कल्पलता]

इन्हीं कारणों से प्रधान मन्त्री राजा का "बहिः प्राणचरः" सखा होता था। इसी से गुरुतर भार प्रधान मंत्री पर ही दिया जाता था—

"जाहु सुमन्त्र जगावहु जाई।"
"लै रथ संग सखा तुम जाहू।"
"राम कुशल कहु सखा सनेहो"
"सखा राम सिय लखन जहँ तहाँ मोहिं पहुँचाव।"

प्रजाओं की कौन कहे [राजा का सखा, सारथी अथच

विश्वासी होने के कारण] प्रधानामात्य का आदर राजा के समान ही समस्त राज परिवार करता था—

'तुम पुनि पितु सम अति हित मोरे। बिनती करौं तात कर जोरे'

'राम सुमन्तहिं आवत देखा। आदर कीन्ह पितासम लेखा॥'

'तुम पितु ससुर सरिस हितकारी। उतर देउँ फिरि अनुचित भारी॥'

"आरतिवश सनमुख भइउँ बिलग न मानब तात।"

उपर्युक्त उद्धृत प्रमाणों पर आप खूब गौर करेंगे तो स्पष्ट समझ में आ जायेगा कि सुमन्त्र प्रधान मन्त्री थे, राजा के सखा थे इसीलिए गुरुतर निभृत मंत्रणा के लिये एकान्त में रथ ले जाने के लिये सारथी भी थे। और दशरथ के यहाँ सारथियों की कमी नहीं थी रामचरित मानस में ही दशरथ के अनगिनत सारथियों का होना वर्णित है।

साम करन अगनित हय होते। ते तिन रथन सारथिन जोते॥

इतने से ही यदि आपका समाधान हो जाय तब तो ठीक ही है और यदि न हो तो कारण पूर्वक लिखने पर पुनः विचार किया जा सकेगा। [मा० न० १८।१०)

शंका १३

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना अयन चितै जानकी लखन तन॥

(क) यह सब जानते हैं कि आवरन पहले दिखलाई पड़ता है वस्तु बाद में उपर्युक्त सोरठे में केवट के अटपटे वचन तो

दिखलाई पड़े किन्तु आवरन (प्रेम) कहीं दिखाई नही पड़ता। ऐसा क्यों अथवा आवरन था हो नहीं तो लपेटे क्रिया क्यों? यदि था तो वह किस प्रकार और कहाँ?

(ख) श्री मानस में (१) हंसना (२)मुस्कुराना (३) विहंसना तीन समानार्थी शब्दों का आयोजन है। क्या यह ठीक है कि यह शब्द क्रम से (१) मिश्रित (२) माधुर्य एवं (३)ऐश्वर्य चरित्रों में प्रयुक्त हुये हैं। अगर ऐसा है तो उपर्युक्त सोरठे में क्या ऐश्वर्य प्रगट किया गया? (रामायणी संतसिंहजीदीन इलाहाबाद)

समाधान

महावीरं धीरं तरणिकुलपालं गृहपतिं
सदा सेवासक्तं रघुवरप्रियभक्तं शुचितरम्।
महाभावारूढं हरिहृदिनिगूढं प्रियतमं
वयं नित्यं वन्दे रघुपतिं प्रियमित्रं गुहभिधम्॥

कोशो में लपेट के अनेक पर्याय दिये हुये हैं! -

लपेट=पकड़ में लाना काबू में करना (हिन्दी शब्दसागर) उलझन फँसाव जो सीधे ढङ्ग से न किया गया हो, घुमाव,फिराव जिसका अर्थ छिपा हो गूढ़ (हिन्दी विश्व कोष कलकत्ता)

कोई बहिरन्तः कोमल वस्तु जब किसी आर्द्र वस्तु में लपेट दी जाती है तो वह आर्द्र वस्तु उसके बाहर भीतर हो जाती है तब दोनों को अलग करना नही बन सकता जैसे चासनी से लपेटी जलेबी गुलाबजामुन, रसगुल्ला आदि और

तब चाशनी पात्र से मिठाई जलेबी आदि बाहर निकालने पर केवल जलेबी आदि का वाह्य रूप ही दिखाई पड़ता है चाशनी का नहीं यद्यपि कि चाशनी उसके बाहर भीतर परिपूर्ण रूप से घुली मिली रहती है। इसी तरह केवट के हृदय पात्र में चाशनी रूप प्रेम लबालब भरा है। उस में लपटी हुई वाणींजब –

मानस ते मुख पंकज आई।

तब केवल बाणी मात्र का कथन हुआ जलेबी की तरह केवट बचन में प्रेम लपटा हुआ था अर्थात् वाह्याभ्यन्तर सर्वथा घुल मिल गया था इसी से उसका वहां कोई अलग रूप नहीं निर्णय हो सकता।

(ख) किसी शब्द का अनेक प्रकार का घुमा फिरा कर अर्थ कर देना कुछ कठिन बात नहीं है। सभा में चाहे जो बात लच्छेदार शब्दों में कह डाले श्रोता ताली पीटही देंगे परन्तु उचित तो यही है कि —

जामे रस बनो रहै सोई अर्थ कीजिये।

(काष्ठ जिह्वा श्री देवतीर्थ स्वामी

मानस में हँसना मुस्कराना आदि शब्द एकही क्रिया के द्योतक हैं। एक उदाहरण लीजिये—

राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखन बहुरि मुसुकाने॥

देखिये जिसे मुसुकाना कहा गया है उसी को वहीं पर ही हँसना कहा गया है। इसी तरह—

"हँसत देखि नखरिसि व्यापी।"

"सुनत राम बोले मुसुकाई।"

यहाँ खरदूषण के दूतों के प्रति श्रीरामजी ने माधुर्य न दिखाकर स्पष्ट रूपेण ऐश्वर्य का ही प्रदर्शन किया है—

"तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं"

"एक बार कालहु सन लरहीं ।।"

दनुज कुल घालक ।। खल सालक मुनि पालक...

अतः मुसुकाना माधुर्य ही है कैसे माना जा सकता है। हां भगवान् के हँसने मुसुकाने आदि में दो भेद श्रीगोस्वामी जी ने ही लिखा है कि श्री रामजी का एक हँसना आदि कृपा के लिये होता है और एक हँसनाआदि माया प्रसार के लिये—

'हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरण मनोहर हासा ।।'

"माया हास बाहु दिगपाला।"

इसलिये मानस में सर्वत्र जहाँ कृपा संवलित हँसी है वहाँ तत्सम्बन्धी (माधुर्यात्मक) कृपासिन्धु, कृपानिधि, करुणा-ऐन आदि नाम है और जहाँ माया प्रसारार्थ हँसी है वहाँ राम रघुबीर आदि ऐश्वर्यात्मक नाम है । उदारण मानस में कहीं भी देखा जा सकता है। (मा० म० ८।३)

शंका १४

सुनि केवट के वैन प्रेम लपेटे अटपटे ।

विहँसे करुणाऐन चितय जानकी लखन तन ।।

श्री जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर क्यों हँसे ?

(लक्ष्मीधर पाठक)

समाधान

केवट हौं तुमहूं मम भाँतिहि तूँ जड़ तारक मैं जल तारत।

हैं जु दोऊ-तरणी कुल पालक हौं परिवार तुँ लोक सँभारत ॥
राम सुअक्षर द्वै तुव नामहिं मैं गुह अक्षर दोय हि धारत ।
तूं अवधेश 'कुमार' निषाद मैं याही ते हौं अब पाँव पखारत॥

समाधान के पहिले केवट की अटपटी बात सुन लेना अधिक उपयुक्त होगा। (क) जिनके लिये बाल्मीकि जी का कहना है—

'विधि हरि संभु नचावनि हारे'—
'तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। और तुमहिं को जाननि हारा ॥'

उनके लिए और उन्हीं से यह नाचीज केवट—

कहइ तुम्हार मर्म मैं जाना ।

(ख) जो प्रभु अवसि पारगा चहहू। तौ पद पदुम पखारन कहहू ॥

यदि हे महाराज आप अवश्य ही पार जाना चाहते हैं, तो मुझसे पग पखरवा कर मेरे साथ अपना खास सम्बन्ध स्थापित कीजिये मैं बलात् नहीं चाहता, आप स्वयं कहिये कि मेरा पाँव पखारो।

पग के धोने और पखारने में एक भारी भेद है। पग धोना एक साधारण काम है, नौकर एवं सामान्य लोग भी पग धो सकते हैं, परन्तु किसी का पग तो वे ही पखार सकते हैं जिनके साथ असाधारण रूप से किसी का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जैसे जनक जी रामजी का पग पखारे पश्चात् धोये भी और दशरथ आदि का पग पखारेही धोये नहीं। इसीसे दृढ़ सम्बन्ध हो जाने के बाद उन लोगों को बिदा कर दिया। परन्तु रामजी का पद पखारे—

वर विलोकि दम्पति अनुरागे। चरण सरोज पखारन लागे॥

और धोये भी

बहुरि राम पद पंकज धोये।

इसी से विवाह के समय—

हिमवन्त जिमि गिरजा महेशहिं हरिहिं श्री सागर दई।

तिमि जनक सिय रामहिं समर्पी विश्वकल कीरति नई॥

अर्थ यह है कि जैसे शिवजी बिबाह करके सपत्नीक घर चले गये। हिमवन्त (ससुर) के घर नहीं रहे और हरिजी श्री के सहित (ससुर) के घर में ही रह गये। इसी तरह श्री रामचन्द्रजी भी अपने असली रूप से अपने घर अवध चले गए और अंशांशरूप से अपने ससुर जनकके यहां रह गये। ऐसी पौराणिक आख्यायिका है। धोने और पखारने की क्रिया में अन्तर है, कि धोने की क्रिया अकेले होती है और पखारने की क्रिया सपरिवार की जाती है। जैसे—

'धोये चरन जनक निज पानी'।

'पद पखारि वर आसन दीन्हा'।

"नारि सहित मुनि पद सिर नावा।" (हिमाचल)

वर विलोक दम्पति अनुरागे। चरण सरोज पखारन लागे॥

(जनक)

पद पखारि जलपान करि आप सहित परिवार।

प्रभु रुख पाइ कै बोलाइ वाल घरनिहिं,

वंदि कै चरन चहुँ दिसि बैठे घेरि घेरि (क०) (केवट)

सादर जल लै पाँव पखारे (शवरी)

शबरी परिवार रहित थीं, अतएव आदर को ही अपना

साथी बनाया। अस्तु बहुत कुछ दाँव पेंच चलने के बाद केवट को पद पखारना प्राप्त हुआ है। अभी कल ही एक बार दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करने में केवट असफल रह चुका है। जोर तो बहुत लगाया कि—

देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा॥
कृपा करिय पुर धारिय पाऊँ। थापिय जन सब लोग सिहाऊ॥

इसीसे अबकी बार आज खूबसम्भलकर प्रयत्न कर रहा है कि—

जौ प्रभु अवसि पारगा चहहू। तौ पद पदुम पखारन कहहू॥

पद पखरवा कर अर्थात् असाधारण रूप से मुझे अपना करके तब उस पार जा सकते हैं। क्योंकि दृढ़ सम्बन्ध हो जाने से बिना बुलाये ही बार-बार आते रहेंगे। जैसे—

"बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय।"

परन्तु बिना बुलाये ही बारहिं बार--"लेन आइहैं बन्धु दोउ।" और यदि पग पखारने को न कहियेगा तो, भी, सस्ते न छूटने पाइयेगा। समझ रखिये धो तो जबरदस्ती ही लूंगा। परन्तु उस हालत में—

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव, न नाथ उतराई चहौं ❀

अर्थात् आपका पग धोकर आपको गोद में उठाकर नाव में चढ़ाऊंगा। अन्यथा पुनः रज लग जाने का भय है।

❀ ऐसा भी अर्थ लोग करते हैं कि नाव का खेवा इसी पार ले लूँगा जो कुछ मुझे लेना होगा और उत अर्थात् उस-पार तो न राई चहौं अर्थात् राई मात्र भी नहीं लेना चाहता और न लूँगा। यह बात निषादराज गुह की है यह भी रामजी

और तब न उतराई चहौं अर्थात् उस हालत में अपनी नाव पर से फिर कभी भी उतरने न दूंगा।

किन्तु रामजी को पार जाना जरूरी था ही और जल्दी ही। कल तो बहाना मिल गया था कि–

मोहिं दीन्ह पितु आयसु आना। ग्राम वास नहिं उचित०

परन्तु आज तो केवट केवट के जाल में फंस गये। सर्वथा लाचार हो जाने पर कहना ही पड़ा।

बेगि आनि जल पाँय पखारू। होत विलम्ब उतारहु पारू॥

उसी पद पखारने के नाते केवट ने गर्व पूर्वक कहा था–

राम कीन्ह आपन जबही ते। भयउँ भुवन भूषण तबहीं ते॥

हंसे क्यों—

(ग) मोहि राम राउर आनि दशरथ शपथ सब सांची कहौं

के साथ साथ ही पार होकर 'रामसीय गुह समेत ठाढ़ भये सुरसरि रेता।' दूसरा केवट जिसने कि डाँड़ चलाकर नाव खेया है, पीछे से वह भी "उतरि दण्डवत कीन्हा" प्रभु ने उसे कुछ देना चाहा, परन्तु उसका मालिक पार उतरने पर कुछ न लेने की बात हार चुका है। इनकी उतरौनी माफ कर चुका है इसी से यह भी–

'बहुत कीन प्रभु लखन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।'

परन्तु मालिक की तरह यह भी अपने जाल में लपेटकर बोला–

फिरती वार मोहि जो देवा।

अर्थात् लौटती वार भी इसी घाट पर और मेरी उपस्थिति में आपको यहाँ अवश्य आना पड़ेगा।

हे राम मुझे तुम्हारी कसम तुम्हारे बाप की कसम बिना पाँव पखारे नाव द्वारा उस पार न करूंगा। चाहे लषन लाल तीरों से मुझे छेद दें किम्वा मारही क्यों न डालें। हाँ एक बात याद कर लीजिये मैं इतनी देर से कह रहा हूँ और आप हां या न कुछ बोलते ही नहीं। अतः इतनी ठक ठक जो आप ने लगाया इसी से अब तो (तुरीया जानकी प्रोक्ता) "तु तुरिता मंह नित लसी श्री मिथिलेश कुमारि" अतः १ तुलसी-सीता जी – "नाथ दास मैं स्वामि तुम" "परवानस्मिकाकुस्थ०" दास लक्ष्मण जी और नाथ आप तीनों का पाँव पखार कर तभी जाने दूंगा। मेरी शपथ सच्ची है। बस

प्रभु सो निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं। (कवि०)

उफ इतना गज़ब वीरवर लक्ष्मण कुमार के सामने रहते हुये भी बाप तक चढ़ाईकर दिया। केवट होकर हन्त !! हन्त !! हन्त!! यही अटपटी बाणी थी पर प्रेम मेंपगी हुई। इसीपर कवि, बक्तागण श्रीराम जी के स्वभाव का वर्णन करते हैं कि श्रीराम जी ने उसके तन – केवट कुलोत्पन्न को न देखकर हृदय के प्रेम का ही निरीक्षण किया क्यों कि –

रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सौ बार हिए की
राम सुजान जान जन जी की। रुचि लालसा रहनि सबही की

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
कुब्जायाः किमु नामरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम्।
वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य क पौरुषम्
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

यही बात यहाँ कही जा रही है कि —

हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरण मनोहर हासा॥ अतः करुणा के उद्रेक से विहसे करुनाऐन क्योंकि चितै जान की। अर्थात् हृदय की भावना=प्रेम को ही देखते हैं, और लख=न तन अर्थात् किसी के शरीर की तरफ नहीं देखते कि यह प्रेमी बाल, जुवान, जरठ, नर नारी। अरुज सरुज, सुन्दर, कुरूप काला गोरा, ब्राह्मण, अन्त्यज कैसा है।

यहाँ रामजी का श्री जानकी और लक्ष्मण जी की ओर देखकर हँसना नहीं है, हाँ हँसना कवितावली में है। परन्तु वह हँसना केवट की अटपटी बात पर नहीं, अपितु देवतों के असयानी ईर्षा पूर्ण वाणी को सुनकर यथा—"विबुध सनेह सानी वानी, असयानी सुनि हँसे राघो जानकी लखन तन हेरि हेरि॥" (मा० मा० ४।१)

शंका १५

१—केवट व गुह राज एक व्यक्ति हैं अथवा दो,-यह तर्क द्वारा बताया जावे।

२—प्रभु ने शृङ्गबेरपुर के घाट पर ही से क्यों जाना निश्चित किया जब वे सब अयोध्यावासियों से छिपकर जारहे थे। उनको तो किसी छोटे से घाट पर अथवा पैदल ही बिना नाव के पार हो जाना चाहिये था।

३—गुहने क्या सुधि पाई – 'यह' शब्द से क्या सूचित होता है

४—प्रभु अकेले हो घाट पर जाते हैं अथवा सब के साथ जाते हैं। मानस में जहां जहाँ सब साथ-साथ चले हैं सीता लक्ष्मण तीनों का नाम दिया है आप कहने से कबि क्या दिखाना चाहता है,

५—निषादराज प्रभु के पार जाने का पूरा प्रबन्ध क्यों नहीं करता है।

६—अगर केवट स्वयं घाट पर आया तो उसने स्वयं नाव क्यों नहीं मगाई जैसा उसने चरण पखारने के बाद में किया है

७—केवट को प्रभु का मर्म कैसे ज्ञात हो गया। यदि केवट दूसरा व्यक्ति है और यह केवट और गुह राज एक ही व्यक्ति हैं तो गुहराज सुमन्त के विदा करने के पश्चात् केवट बन कर नाव पर दूसरी ओर गंगा के कैसे पहुँच गये।

८—मानस में कहीं नाव से पार होना नहीं लिखा हैं-फिर यहां पर प्रभु ने क्यों इतना हठ पकड़ा।

९—तुलसी दास जी यह प्रसँग यदि आध्यात्म रामायण से लिया है तो फिर उनने इसका स्थल क्यों बदल दिया काव्य भेद कह कर इसका समाधान सम्भव नहीं है।

१०—प्रभु के हँसने का क्या भाव है—

(रघुवीर सहाय इन्जीनियर)

समाधान

परम प्रेमपन पीन नौमिवीर गुह हरि सखा।
पाँव पखारि न लीन तब तक पार न जानदिय॥

१—केवट और निषाद पर्याय है – जाति है। गङ्गा पार होते समय प्रभु का पाद प्रक्षालन करने वाला केवट गुह नामक निपाद पति है और नाव खेकर पार लेजाने वाला केवट दूसरा है जो कि केवट गुह का नौकर है तर्क के लिए ऊपर के समाधनों को देखिये।

२—महाराज श्री दशरथ जी ने सुमन्त को आज्ञा दिया था कि " रथ चढ़ाइ दिखराइ बन फिरेहु गये दिन चारि।
" बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि वेगि द्वौ भाई॥"

इसी से सुमन्त रथ पर लेकर शृंगवेरपुर गये। अन्य कोई भी स्थान घाट समीप और रथ जाने लायक मार्ग पर नही था इसी से शृंगवेर पुर ही सुमंत ले गये। (आज भी श्रीअवध से गङ्गा जी का सबसे समीपी घाट शृंगवेरपुर ही है।

३—गुहने यही सुधि पाया कि अयोध्या नरेश के प्रधानामात्य, युवराज, युवराज्ञी और मझिले राजकुमार मात्र एक रथ पर शृँगवेर पुर ग्राम के बाहर आये हैं। साथ में राज्योपकरण नही है। यह शब्द यही कह रहा है कोई गूढ़ बात नहींहै।

४—प्रभु अकेले ही करार पर नहीं गये किन्तु श्री सीता जी और लक्ष्मण जी साथ में गये थे। वनवास प्रभु को हुआ है अतः त्वरा भी उन्हीं को है इसी से वार्तालाप उन्ही से होताहै

५-६—गुह प्रभु का बाल सखा है अतः सख्य रसके चोचले करके " सख्यरसानन्द " का अनुभव कर रहा है।

७-क—रात में श्री लक्ष्मण जी ने गुह को समझाते हुए प्रभु का मर्म बतला दिया हैं कि —

सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा॥
भगत भूमि भूसुरि सुरभि, सुरहित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुजतनु, सुनत मिटहिं जगजाल॥

सखा समुझि अस परिहर मोहू । सिय रघुबीर चरण रत होहू ॥

ख— "देखि निषाद विषाद वश, धुनहिं शीश पछताहिं ॥"

धुनहिं शीश पछताहिं ये दोनों बहुबचनात्मक क्रिया का प्रयोग बता रहा है कि शृंगबेरपुर के समस्त निषाद गण वहां उपस्थित थे। गुहराज की जाति ही केवट है तब उसका केवट बनना कैसा ?

८—यहां का घाट मालिक बाल सखा है इस से वह सख्य भाव से ही सब कुछ कह रहा रहा है, प्रभु ने हठ पकड़ा यह तो किसी शब्द से सूचित नही होता। गङ्गा के अतिरिक्त जहां नाव की सम्भावना नहीं रहती थी वहां प्लव बेड़ा बना कर पार होते थे बाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ५५—

तत्र यूयं प्लवं कृत्वा तरतांशुमतीं नदीम् ॥ ६

इसी सर्ग में श्लोक १४ से १८ तक प्लवनिर्माण करके पार होना वर्णित है।

९—प्रभु के हँसने का भाव पिछले समाधानों में लिखा जा चुका है। पिष्टपेषण अभीष्ट नहीं। (मा० म० १४।९)

शंका १९

तिहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुञ्ज लघु वयस सुहावा ॥

ये तापस कौन थे जिनका अकसमात् बीच में टपक पड़ना मात्र है, न वापस जाना है, न नाम पता है और प्रसंगान्तर भी लगता है।

समाधान

ज्ञाताज्ञात अनन्त बिहरत जग-मंगल करत।
भक्त राम भगवन्त तिन पद प्रणत 'कुमार' नित ॥

अर्वाचीन अन्वेषकों (जैसे डिप्टी कलक्टर लालासीताराम भूप प्रो० रामदास गौड़ एम० ए० आदि) के मत से यह प्रसंग क्षेपक सिद्ध किया ही जा चुका है। परम प्राचीन टीकाकार पंजाबी संत सिंह जी 'ज्ञानी जी' मध्यकालीन टीकाकार मैनपूरी, शुकदेव लालजी और अर्वाचीन बिनायकी टीकाकार बिनायक राव आदि ने भी तापस प्रसंग को क्षेपक ही माना है और सत्तर्क से भी क्षेपक मानने को वाध्य होना पड़ता है। इसका बिस्तृत विवेचन मेरे 'रामचरित के तीन क्षेपक' ग्रन्थ में देखिये। परन्तु जो लोग क्षेपक नही मानते वे लोग अनेक प्रकार की कल्पना करके—कामद चित्रकूट अग्नि, इन्द्र, गोस्वामीजी और बाल्मीकि का शिष्य आदि किसी एक को तापस सिद्ध करने के लिये सारी तर्क बुद्धि लगा देते हैं। वैसे ही एक कल्पना यह भी हो सकती है कि बन यात्रा में श्री रामजी के अनेक प्रेमी भक्त मिले हैं यदि केवल सबका नाम मात्र लिखा जाता तो महाभारत से भी बड़ा पोथा हो जाना असम्भव नहीं था, तथा सबका नाम भी कौन जान सकता है और यदि यह मान लिया जाय कि जिनका नाम लिखा गया है, वे ही मात्र मिले थे तो भी नहीं बनता अतः निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अनेक ऐसे भी प्रेमी बन में मिले थे जिनकी श्री सीताराम लक्ष्मण जी के अतिरिक्त चौथा व्यक्ति उन्हें न पहिचानता ही था और न उनका नाम ही जान सकता था। उन्हीं प्रच्छन्न प्रेमियों का यह तापस भी एक उदाहरण स्वरूप रहा होगा।

(मा० म० ८।१०)

शंका १७

विशुद्ध तपस्वी वेष में होते हुए भी श्रीरामजी ने बाल्मीकि से अपने लिये नरेश क्यों कहा था कि—

मुनि तापस जिनते दुख लहहीं। ते नरेश बिनु पावक दहहीं॥
(महन्त श्री रामदास जी रामडीह कुटी, चड़रांव गोरखपुर)

समाधान

तपन तनय तप जप निरत तपी त्रसक तप हेतु।
तापस नृप बनि बन भ्रमत भव्य भानु कुल केतु॥

कारण विशेष वश श्रीराम जी चौदह बर्ष के लिये विशुद्ध तपस्वी वेष में रहकर बाणप्रस्थ नियम पालन के लिये बाध्य थे। वनवास के पूर्व श्रीराम जी प्रजा पालक थे—

आयसु मांगि करहिं पुर काजा।

और बनवास के बाद तो राजा रहे ही। अतः "पतित संदंशन न्याय" से बनवास काल में भी प्रजा पालन वाला राजनियम पालन करना अनिवार्य था और माता जी से तो स्वयं ही कहा था कि—

पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू।

इस वक्तव्य से वन का संरक्षकत्व प्राप्त था। और वन में जाने पर मुनियों ने स्पष्ट शब्दों में श्रीराम जी को अपना राजा स्वीकार किया था कि आप चाहे नगर में (राज साज सज्जा से) रहें, चाहें बन में (तपस्वी वेष में) रहें, हर हालत में हमारे राजा आपही हैं और हम बनवासी मुनि-तापसगण आपसे उसी तरह रक्ष्य हैं जैसे कि आपके पूर्वज राजाओं से सदा रक्षित होते आये हैं। इसका वर्णन आदि कवि के शब्दों में देखिये— बा० रा० आर० सर्ग १

ते वयं भक्ता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः ॥२०॥
न्यस्तदण्डा वयं राजन् जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
रक्षणीयास्त्वया शश्वद् गर्भभूतास्तपोधनाः ॥२१॥

इसी से रावण भी तपस्वी वेषधारी को भूप अर्थात् राजा कहता था—

हौं मारिहौं भूप दोउ भाई ॥

इन सब प्रमाणों के देखते हुए श्री राम जी का अपने लिये नरेश कहना सर्वथा न्याय्य है। (मा० म० २२।३)

शंका १८

अयोध्यकाण्ड के हर पचीसवें छन्द के बाद छन्द और सोरठा प्रति छन्द में गोस्वामी जी का नाम है परन्तु एकसौ पचीस दोहे पर जो पाँचवा छन्द है उसमें गोस्वामी जी का नाम नही है, ओर किसी सोरठे में गोस्वामी जी का नाम नहीं है पर अन्तिम सोरठे में गोस्वामी जी का नाम है ऐसा क्यों ? (श्री कपीन्द्रजी रामायणी)

समाधान

नमामि हुलसीसूनुं तुलसीं परमं कविम्।
यस्य वाक्यामृतं पीत्वा नरोमोक्षमवाप्नुयात् ॥

वृहद् ब्रह्मरामायण के सिद्धान्त खण्ड के—

वाल्मीकिस्तुलसी दासो भविष्यति कलौयुगे ॥

महाकाल संहिता के—

वाल्मीकिस्तुलसी दासौ कलौ देविभविष्यति ॥

श्री नाभाजी के भक्तमाल के—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो ॥

इत्यादि प्रमाणानुसार श्रीबाल्मीकि महर्षि ही गोस्वामी श्री तुलसीदास जी के रूप में हुये थे और मानस के द्वितीय सोपान अयोध्या काण्ड । १२५ वें दोहे पर का छन्द श्री-बाल्मीकि महर्षि कथित शब्दों का भाषानुवाद है उसमें जो कहा गया है वह श्री बाल्मीकि जी का उद्‌गार है उस छन्द में यदि श्री गोस्वामी जी का नाम रहता तो श्री बाल्मीकि और श्री तुलसीदास जी दोनों दो व्यक्ति ज्ञात होने लगते इसीसे उस छन्द में द्वितीय सोपान की शैली के विपरीत होने पर भी श्री गोस्वामीजी का नाम नहीं है।

प्रसंग के पूर्व में यह कह चुके हैं कि प्रातःकाल जागते ही श्रीमहारानीजी का स्वप्न सुनकर श्रीराम जी ने यह कहाकि—

"लखन सपन यह नीक न होई" तत्पश्चात्

"असकहि बन्धु समेत नहाने" और

"सनमानि सुर मुनि बृन्द बैठे उतर दिशि देखत भये"

उस समय श्री राम लक्ष्मण सीता जो तीनों व्यक्ति साथ ही बैठे थे जब कोल किरातों ने श्री भरत लाल जी के आगमन की सूचना दिया जिसे सुनकर तीनों व्यक्ति प्रमुदित हुए और तीनोंही व्यक्तियों के नयनाम्बुज में प्रेम जल भर आया इसी से बताने के लिए उस सोरठे में तुलसी शब्द रख कर बताया कि 'तु' से तुरीयो रघुनन्दन। श्रीरामजी 'ल' से लक्ष्मण जी और 'सी' से सीता जी तीनों की प्रेमाकुल दशा होगई। इसकी पुष्टि बहुरि सोच वश भे सिय रमनू, से हो रही है कि पहले तीनों

व्यक्ति की एक दशा थी।

और अन्तिम सोरेठे में तुलसी शब्द है वह काण्डान्त का परिचायक है

शंका १९

महाराज बाल्मीकि से श्रीं रामचन्द्रजी ने पूँछा था निवास उन्होंने बतलाया था कि किसी के मन मन्दिर में बसें, हृदयरूपी घट से वर्णन है और दूसरी जगह बतलाये हैं उसको महात्मा तुलसी दास ने मन मन्दिर क्यों बताया। (मा० म० ७४)

समाधान

पर व्यूह विभवादि सब अन्तर्यामि अनूप
पै नित भक्ताधीनरह श्री हरि अर्चारूप॥

यद्यपि कि घर, गृह, सदन, मन्दिर आदि परस्पर पर्याय है तो भी श्री बाल्मीकि कथित भिन्न भिन्न नामों का भिन्न २ कारण है उनमें यहाँ आपके पूछने से दो स्थानों पर मन्दिर कहने का कारण लिख रहा हूं। घर गृह डेरा आदि में रहने वाला व्यक्ति अपनी इक्षा से आने जाने खाने पीने आदि सभी कार्यों में स्वतन्त्र होता है और मन्दिर में अहर्निश निरन्तर बसने वाला प्रतिष्ठित देवता होता है और वह देवता अपना सब वाह्य ब्यापार अर्चक के हाथ में दिये रहकर तत्परतंत्र बना रहता है। भगवदर्चावतार का वैभव इसलिए सर्व श्रेष्ठ एवं सर्व सुगम कहा जाता है कि भगवान सर्वतन्त्र स्वतंत्र होते हुए भी अर्चक के सर्वथा परतंत्र रहते हैं अर्चक जैसे चाहे वैसे रक्खै इन का शयन करना जाग ना नहाना भोजन करना आदि व्यापार

अर्चकाधीन रहता हैं इसका एक मात्र कारण भगवान की परम कृपा ही हैं। महर्षि जी का कहना है कि जिसका सभी कार्यकलाप आपके चरण रति प्राप्त्यर्थ हो और जिसके सब कोई और सबकुछ आपही एकमात्र हों उस महाभाग के सर्वदा आधीन होकर आप तीनों मूर्तियां उसके मन मन्दिर में निवास कीजिये।

(मा० म० ७।४)

शंका २०

ते पितु मातु कहहु सखि कइसे। जिन पठये बन बालक अइसे॥

यह चौपाई अयो० ८६।२ तथा अयो० ११०।७ में दो बार क्यों लिखी गई है ? (पं० भगवत किशोर 'व्याकुल' अयोध्या)

समाधान

नगर ग्राम पुर विपिन गिरि बसत जहाँ तनु धारि।
सबहिं प्रानसम प्रिय लगत लछिमन सीय खरारि॥

नागरिक और ग्रामीण ये दो भेद सभ्य संसार में सदैव से चले आते हैं। ग्रामीण (देहाती) जनता में सरलता स्वाभाविक रूपसे कूट-कूट कर भरी रहती है। उनमें बनावटीपना नहीं रहता और नागरिकों में तो दिखाऊपन बनावट की मात्रा परिणाम से भी अधिक रूप में रहती है। वे हर बात में मर्यादा का ध्यान विशेष रूपसे रखते हुये ही व्यवहार करते हैं। आजभी आप नगरों (शहरों) में जाते हैं तो देखते हैं कि वहाँ के लोग नागरिक सभ्यता का कितना ध्यान रखते हुए ही मिलते हैं और देहातों में भोले भाले ग्रामीण सज्जन लोग एक अपरिचित के साथ भी आत्मीयता का व्यवहार करते हैं। गोस्वामीजीने

श्रीकृष्ण गीतावली मे लिखा है कि गोपिकाओं ने उद्धव से नागरिकों और ग्रामिणों का अन्तर बतलाते हुए कहा था कि—

'जुगुति धूम बघारिबे की जानिहैं न गवाँरि।'
'मथुरा बड़ो नगर नागर नर जिन जाप्तहिं जदुनाथ पढ़ायो।'
'तुलसी ये नागरिन योग पट······। इत्यादि। अस्तु

श्रृङ्गबेरपुर तक श्रीरामजी राजकीय रथपर सम्राट् के महामात्य सुमन्त के सारथ्य में गये थे अभी केश भी राज-कुमारोचित ही थे, जटा रूप ने नहीं थे और गुह निषादों का राजा था – एक छोटा सा माण्डलिक राजा था। श्रृङ्गवेरपुर उसकी राजधानी थी। पुलिस, पल्टन, जासूस, सामन्त सभी उसके अपने थे, श्रृङ्गवेरपुर के निवासी राजा के समीपी अत-एव नागरिक थे। श्री रामादिकों को देखने श्रृङ्गबेरपुर (नगर) से गंगातट पर वहाँ के सभी नर नारि आये थे। परन्तु नाग-रिक सभ्यता ने उन्हें श्रीरामजी का इच्छानुरूप आतिथ्य (सेवा सत्कार) नहीं करने दिया। उनकी सभ्यता बतला रही थी कि राजकुमारों का थोचित आतिथ्य सत्कार राजा से ही हो सकता है दूसरे लोग नहीं कर सकते। इसीसे किसीने राम जी के लिये आसन शयन की कौन कहे जलपान तक के लिये भी नहीं पूँछा केवल आपस में काना फूसी करते रहे कि—

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठये बन बालक ऐसे॥

और अयोध्याकाण्ड दोहा १०६ से १२२ तक जमुनापार के गहोरावासी ग्रामीणों का प्रेम सम्मिलित रूप से वर्णित है। न लोगों को राजकुमार रामजी का परिचय तो मिल ही गया था, तो भी वे ग्राभीण सरलता वस "यह तो चक्रवर्ती कुमार

हैं हम ग्रामीणों का आतिथ्य कैसे स्वीकार करेंगे अथवा हमसे ठीक सेवा बन पड़ेगी या नहीं, हम इनसे बात कैसे करें", इत्यादि का विचार न करके—

'...डासि मृदुल तृण पात। कहहिं गँवाइय छनिक श्रम०...'
'अँचइ नाथ कहहिं मृदुबानी' 'राजकुमारि विनय हम करहीं।'

इत्यादि कहने में किसी संकोच का अनुभव नहीं करते थे। उन ग्रामीणों के मुख से भी—

"ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठये बन बालक ऐसे॥'

यही निकला। इसका कारण यह है कि व्यवहार में नागरिक और ग्रामीण जितने भिन्न हों परन्तु श्रीराम जी के लिए प्रेम सबमें एकही तरह का ही है इसीसे ग्रामीण और नागरिक दोनों के मुखसे एकही तरह के शब्द निकलते थे। इसी से दोनों जगह एक अक्षर का भी फेरफार न करके वही पंक्ति रखी गई कि—

'ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठये बन बालक ऐसे॥'

और एक जगह की बात बताकर कह दिया कि—

गांव गांव अस होइ अनन्दू॥

शंका २१ (मा०म० ७।१२)

सखा राम सिय लखन जहँ तहाँ मोहिं पहुँचाउ।
नाहित चहात चलन अब प्राण कहउँ सतिभाउ॥

मरणासन्न दशरथ का प्राण जब राम के पास पहुँचाने से बच जाने की बात थी तब वशिष्ठ कौशिल्या और सुमन्त आदि कों ने उन्हें चित्रकूट क्यों नही पहुँचा दिया।

(डा० राजेन्द्र प्रसाद सिन्हा)

समाधान

विघ्न विदारन बरदवर वारण वदन वरेश।
बरदायक बरदा तनय वदत वेद विश्वेश ॥

उस समय यह किसे ज्ञात था। कि श्रीरामजी चित्रकूट में स्थिर हैं। यमुनापार ही से तो निषाद राज गुह भी लौटा दिऐ गये थे और गुहराज के सामने चित्रकूट जाने की कोई बात भी नहीं थी। प्रत्युत गुहराज ने तो देखा था कि एक रात्रि से अधिक तो श्री रामजी कहीं रहे ही नहीं यमुनापार से लौटकर सुमन्त से इस विषय में कुछ कहा भी नहीं क्यों कि सुमन्त उस समय शोक शिथिल थे तब भला उस अज्ञात दशा में कोई किस तरह —

सखा राम सिय लखन जहं तहां मोहि पहुँचाउ।

इस आज्ञा तथा अभिलाषा का पालन कर सकता था। और श्री भरत जी के लौटने तथा दशरथ जी की दशगात्र त्रयो-दशाह आदि सम्पन्न करने तक निषाद राज को चित्रकूटनिवास का पूरा पता लग गया था और उन्हीं के दारा फिर श्री कौशिल्या आदि को मालूम हो गया होगा परन्तु चित्रकूट के भी निश्चित स्थल का ठीक पता नहीं था इसी से तो भरतजी बन में किसी निश्चित स्थान के लिए नही चले थे अपितु (चित्रकूट) के बन में कही ढूँढ़कर मिलने के लिये चले थे। और श्री दश-रथ जी तो तुरन्त ही पहुँचाउ और प्राणचलन चलन चहत" कह रहे हैं परन्तु तुरन्त पहुँचाना तो सर्वथा असम्भव ही था।

शंका २२

बन्दौं अवध भुवाल सत्य प्रेम जिहि राम पर।

यहां राम पर सत्य प्रेम कैसे कहा जबकि—

'राख्यो राम सत्य मोहिं त्यागी'

रघुकुल रीति सदा चलिआई। प्राण जाहिं वरु बचन न जाई॥

कहा गया है। इन पंक्तियों पर विचार करने से यही ज्ञात होता है कि केवल रघुकुल रीति (वचन पालन) पर ही राजा का प्रेम था राम पर नहीं अन्यथा राम को बन न देते ?

(विश्वंभर तिवारी)

(मणि में यह शंका लगभग दो पृष्ठों में छपी है परन्तु मैंने पुस्तक में उसका सारांशमात्र दिया है। शंकाकार महोदय क्षमा करेंगे। वैसे समाधान तो मैं इनके प्रति शब्दों का कर रहा हूँ (समाधनकार)

समाधान

लीला विलोलनयनाद्भुतशुक्लदंता,
लावण्यपूर्णकरुणार्णबचारुहासाम्।
कामप्रदां कमलार्चितपादपद्मां,
नित्यं नतोऽस्म्यखिलसौख्यप्रदां सुसीताम्॥

आपके सारे प्रश्नों-तर्कों का एकमात्र समुचित उत्तर समाधान केवल यही है कि राजा एकमात्र श्रीरामजी में सत्य प्रेम होने के कारण ही गुरुआज्ञा, नृपनीति और दिनकरकुल-रीति आदि को ठुकराकर श्रीरामजी को बन जाने देते हैं। यदि ऐसा न होता तो अकेले कैकेयीजी में वचन बद्ध होते हैं परन्तु इसके थोड़ी देर पहिले (दिनमें) ही राजसभा में गुरु, मंत्री और प्रजा आदि सबके सामने बचन बद्ध हो चुके हैं कि कल श्री रामजी को राज्य दिया जावगा। अतः राजा ने एकमात्र

वचन पालनार्थ (एक रीति मात्र रक्षणार्थ) श्रीरामजी को वन जाने दिया, ऐसा कहना उचित नहीं जान पड़ता। अतः बन देने का एकमात्र कारण 'सत्य प्रेम जिहि राम पर' ही है। इसी राम प्रेम के कारण शपथ को सत्य करने के कारण को ही श्री राम जी ने भी स्वीकार किया है=

'राखेउ राउ सत्य मोहिं त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम प्रणलागी ॥

वह प्रेम का कारण इस तरह कि अनन्तकाल से शपथ का बहुत बड़ा महत्व दिया गया है। इसीलिए कि यदि किसी कार्य के लिये किसी देवता देवी की शपथ खाई जाय और वह शापथिक कार्य पूरा न करे तो वे देवता देवीगण उस श कर्ता का अनिष्ट करते हैं, और यदि अपनी या अपने किसी प्रिय की शपथ खाकर कार्य पूरा न करै या असत्य भाषण करने वाला हो जाय तो वह शपथ लेने वाला व्यक्ति अपना या उस प्रिय का अर्थात् जिसकी शपथ की गई रहती है उसके धर्म, तेज आयु और बल आदि की क्षीणता होती है। इसीसे कहा गया है कि—　　　साँचेहु शपथ अघाइ अकाजू।

शपथ के इस तथ्य को मंथरा भी खूब जानती थी और उसे निश्चय था कि राजा कभी भी श्रीराम प्रेम के आगे अपनी किसी भी वस्तु या अपने किसी अन्य की परवाह न करेंगे। राजा को राम प्रेम के आगे प्राण भी तुच्छ है। और हुआ भी ऐसा ही। राजा ने भी यही बात कही भी थी—

अयश होउ वरु सुयश नसाऊ। नर्क परौं वरु सुरपुर जाऊँ ॥

आदि। इसीसे मंथरा ने रानी को समझाकर सिखलाया है कि-

भूपति राम शपथ जब करई । तब माँगेहु जिहि बचन न टरई ॥

अर्थात् राम शपथ करने के बाद यदि राजा अपने बचन से टरते हैं तो प्राण प्रिय पुत्र की आयु, तेज, धर्म, बल आदि की क्षीणता होती है जिसे कि राजा कभी सहन नही कर सकते, और हुआ भी ऐसा ही, अर्थात् सदा से—

विप्र साधु सुर पूजत राजा । करत रामहित मंगल साजा ॥

और जब राजा ने आवेश मे आकर—

भामिनि राम शपथ सत मोहीं । बिहँसि माँगु मन भावति बाता॥

कहा और बर देने के लिये स शपथ सन्नद्ध हुये और—

तिहि पर राम शपथ करि आई ॥ सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥

इस प्रकार वार बार राजा की ओर से राम शपथ की दृढ़ता होने पर ही—

'यह सुनि मन गुनि शपथ बड़ि बिहंसि उठी मतिमन्द ।'

'बात दृढ़ाइ कुमति हंसि बोली ।'

इसी राम शपथ के कारण ही राजा ने स्पष्ट शब्दो से एक वार भी नही कहा कि राम बन को न जांय, यद्यपि कि अन्य बहुत सी उपाय किया—

राय राम राखन हित लागी । बहुब उपाय किये छल त्यागी॥

यदि स्पष्ट रोकते तो शपथ के विपरीत होने से राजाकी ट मे श्रीरामजी का अनिष्ट होता जो राजा को किंचित मात्र भी किसी तरह स्वीकार नहीं है । राजा ही क्या कोई भी अपने प्रेम पात्र का किसी तरह का भी किंचित मात्र अनिष्ट नहीं चाहता, और राजा का तो "सत्य प्रेम जिहि राम पर" था ही । निष्कर्ष यह कि रघुकुल रीति पालनार्थ श्री रामजी को

वन नहीं जाने दिया अपितु शापथिक वात अन्यथा होने से श्रीराम जी का अनिष्ट होता जो कि राजा किसी तरह नहीं चाहते थे, इसीसे राजा ने श्री राम जी को बन जाने से नहीं रोका था।

जो लोग बाल्मीकीय रामायण में दिये गये क्षेपक के आधार पर कल्पना करते हैं कि दशरथ ने प्रतिज्ञा करके कैकेयी का ब्याह किया था कि कैकेयी का ही पुत्र राजा होगा चाहे वह छोटा हो चाहे वह बड़ा। उनकी कल्पना गलत इससे है कि यदि ऐसी प्रतिज्ञा हुई होती तो कैकेयी जी भरतजी को राज दिलाने के लिए कानून का सहारा लेतीं न कि कोपभवन, बरदान् शपथ आदिं छल प्रपंच कपट का ॥ (मा० म० ७।८)

शंका २२

महाराज दशरथ सरकार राम की वियोगावस्था में "मणि बिनु फणि" और जल बिनु मीना की भाँति शरीरार्पित र देने का बरदान (मनु के रूप में) प्राप्त कर चुके थे। फिर जब अनिश्चित काल के लिये भगवान राम कौशिक मख रक्षणार्थ चले गए उस समय जो वियोग हुआ तब महाराज ने प्राण क्यों नही छोड़ा। (जिसमें भगवान के लौटने की कोई अवधि नही थी)। मालूम नहीं यज्ञ रक्षा एक दिन एक माह या दस बीस वर्षों में होगी। इसपर भी "जीवन राम दरश आधीना" स्वभाव वाले महाराज कैसे जीवित रहे, और जिस में चौदह बर्ष की अवधि थी कैकेयी के द्वारा चौदह बर्ष का ही बरदान माँगा गया था। यथा—

तापस वेष विशेष उदासी। चौदह बर्ष राम बनबासी ॥

तब महाराज दशरथ ने इस बन गमन के वियोग से कैसे प्राण छोड़ दिया।

महारानी कौशल्या के "अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना" वाले शब्दों में महाराज प्रिय परिजनों से अलग हैं क्या ?

(रामरक्षित रामायणी)

समाधान

सुललित गुणगींतं साधुबृन्दैर्परीतं ब्रतप्रबलपुनीतंसंमनोवादीतम्।
विलसतपटपीतंपीतयज्ञोपतीतं,पुरजनपरिप्रीतंनौमिरामंससीतम्।।

श्री मनुजी ने भगवान श्रीराम को पुत्र रूपमें प्राप्त करने के समय अर्थात् श्री दशरथ रूप में अपने जीवन की मिति वर-दान में मांगा था किः—

मनिबिनुफनि जिमिजलबिनुमीना। ममजीवनतिमितुमहिंअधीना।।

मणि के छिन जाने पर सर्प जीवित तो रहता है परन्तु दुःखी दीन अर्थात् व्याकुल और बिहाल होकरः—

मणि बिनु फणिक जियै दुख दीना ।।

मणि लिये फणि जियै व्याकुल विहालरे ।। :विनय प०:

परन्तु जल के बिना मछली का जीवन मुहूर्त के लिये भी दुर्भर हो जाता है जैसा कि श्रीलक्ष्मण जी ने श्री राम जी से कहा है:=

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव ।
क्षणार्द्ध मपि जीवावो मत्स्योद्धतमिवाम्भसा ।।वा०रा० २।५३।३२

श्री वाल्मीकि महर्षि ने स्पष्ट लिखा है कि श्री विश्वामित्र जी ने केवल दशरात्रि मात्र के लिये ही राम जी को मांगा था क्योंकि उनके यज्ञ में केवल छः दिन का ही कृत्य बाकी था चार

दिन मार्ग के लिये । अतः श्री विश्वामित्र जी के साथ से तो लौटने की अवधि थी और उड़ते पड़ते अस्तव्यस्त रूप में श्री राम जी का कुशल एवं सुयश समाचार भी मिला ही करता था परन्तु वात्सल्यातिरेक के कारण उन पुरुषार्थ प्रधान समाचारों पर पूरा विश्वास नहीं होता था, उन समाचारों में अतिरंजना की मात्रा अधिक मान लिया करते थे । जब श्रीजनकजी की चिट्ठी से विश्वसनीय समाचार मिला तो श्री महाराज ने स्वयं ही स्वीकार किया कि:—

जब ते मुनिवर गये लिवाई । तबते आजु साँचि सुधि पाई ॥

इस पंक्ति का सांचि शब्द ही कह रहा है कि अब तक भी सुधि मिला करती थी परन्तु उन्हें सांच मानने को हृदय तैयार नहीं होता था । अस्तु:—

मुख्य बात तो यह है कि श्री बसिष्ठ जी ने श्रीविश्वामित्र जी के साथ भेजने के लिए समझा दिया था:—

तब बशिष्ठ बहु बिधि समझावा । नृप संदेह नाश कहँ पावा ॥

अतः निश्चय होगया था कि महर्षि श्री विश्वामित्र जी के साथ जाने पर श्री रामजी को भाषा भोजन वेष आदि का कष्ट न होगा, इसी से श्री दशरथ जी ने अपना पितृत्व धर्म श्री विश्वामित्र जी को सौंप दिया कि:—

तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ ।

इसी कारण से राजकुमार के साथ कोई भी सेवक एवं अपना कोई गुप्त या प्रत्यक्ष चर नहीं लगाया । यदि चर लगाते तो उसका अर्थ होता श्री विश्वामित्र जी की शक्तिपर सरासर अविश्वास करना और जब श्री बशिष्ठ जी के समझाने पर सब

संदेह नाशही हो चुके थे तो अविश्वास को स्थान ही कहाँ मिल मिल सकता था परन्तुः श्री मनु रूपसे वरदान के कारण श्री रामजी के वियोग में मणि विनु फणि की दशा होगई थी । उन दिनों इतना दुसह दुःख था कि अपने को मृतकवत् समझते थे जिसका स्पष्टीकरण जनकपुर में पिता पुत्र की भेंट पर होता है।

सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे । मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे ॥

और बनवास काल में चौदह वर्ष की लम्बी अवधि थी, भोजन और वेष भी जंगली ही का नियमित था:—

भूमि सयन बल्कल बसन, असन कंद फल फूल । सो भी०
तेकि सदा सब दिन मिलहिं, राम समय अनुकूल ॥

और श्री बिश्वामित्र जी सरीखे कोई शक्तिमान् महापुरुष अपनी जिम्मेदारी लेकर साथ में नहीं था जिन्हे कि अपना पितृत्व धर्म सौंप कर निश्चित रहते । इसीसे चौदह वर्ष का बनवास देकर जलरहित मीन की दशा का अनुभव करके शरीर का त्याग कर दिया । हां जिस दिन श्री रामजी घर से बनको प्रस्थान कर गये उसी दिन दशरथ जी का शरीरान्त इसलिये नहीं हुआ कि यद्यपि जल सूख गया परन्तु सुमन्त द्वारा गंगातट से लौटा लाने की आशा रूपी कीच (पंक) अवशिष्ट था और:-

नीच कीच बिच मगन जस मीनहिं सलिल संकोच ।

अतः सुमन्त के लौटने पर, कींच भी सूख जाने पर मृत्यु होगई । दोनों बार के वियोग में भेद होने से ही श्रीदशरथ जी के जीवन मरण में भेद था । (मा० म० ५।५)

शंका २३

पुनि कछु लखन कही कटु बानी, प्रभु बरजेउ बड़ अनुचितजानी॥

लक्ष्मण जी ने क्या अनुचित कटु बानी कही थी, गोस्वामीजी ने इसे कहां स्पष्ट किया है। (—काशीनाथ साहू)

समाधान

रामसीय पायक सुबुध गायक प्रभु गुण गाथ।
रामभक्तिदायक सुखद कपि नायक पद माथ॥

श्री लक्ष्मण जी ने जो अनुचित कहा था उसे उसी समय श्री रामचन्द्र जी ने शपथ देकर सुमन्त को कहने के लिए मना कर दिया था:—

सकुचि राम निज शपथ दिवाई। कहब न ताय लखन लरिकाई॥

इसी से सुमन्त जी ने भी चक्रवर्ती जी से नहीं कहा भला जिस बात के न कहने के लिये स्वयं श्री रामचन्द्र जी अपनी शपथ दे रहे हैं उसे श्री गोस्वामी जी किसी भी स्थलपर कैसे प्रगट कर सकते हैं। अतएव जो कोई मानस वाचक, व्याख्याता या टीकाकार, लेखक आदि यदि अपनी कल्पना किंवा ग्रंथान्तर प्रमाण से लक्ष्मणोक्त कटु वाणी का उल्लेख या कथन करते हैं तो वे श्री रामजी की शपथ तोड़कर मार्यादा भंग के अपराधी होते हैं।

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि श्री राम जी की शपथ को सुमन्त ने क्यों तोड़ा ? क्यों राजा से कहा कि "लक्ष्मण ने कटु वचन कहा था।" इसके उत्तर में समझना चाहिये कि जब राजा दशरथ जी ने मन्त्री सुमन्त को बार बार आज्ञा दिया कि—

"पुनि पुनि मंत्रिहिं पूंछत राऊ। प्रिय तम सुवन संदेश सुनाऊ॥
शोक विकल पुनि पूंछ नरेशू। कहु सिय राम लखन संदेशू॥"

तो सुमन्त जी ने श्री राम और सीता जी का संदेश तो सुना दिया, परन्तु श्री लक्ष्मणजी का कोई सन्देश न सुना सकने की माफी मांग   शब्दों में—

लखन कहेउ कछु वचन कठोरा। वरजि राम तब मोहिं निहोरा॥
बार बार निज शपथ दिवाई। कहब न तात लखन लरिकाई॥

श्रीराम जी के शपथ देने की बात सुनकर राजा ने पुनः सुमन्त को बाध्य करके नहीं पूंछा। परन्तु उन सज्जनों को क्या कहा जाय जो श्री राम जी की शपथ की परवाह न करके मानस के लेखकों एवं वक्ताओं को वाध्य करते हैं। भगवान् श्री रामचन्द्र जी उन्हे सुबुद्धि प्रदान करैं। (मा०म० १३।१०)

शंका २४

मरतहु जासु नाम मुख आवा। अधमउ मुक्त होइ श्रुति गावा॥

जब ऐसा सत्य तथ्य है तब छः बार राम राम कहते हुये शरीर त्याग करने वाले दशरथ महाराज की मुक्ति क्यों नही हुई और जब—

गीध अधम खग आमिष भोगी।

की मुक्ति हुई तो क्या हरिधाम और सुरधाम एकही मुक्त लोक का नाम है जो—

सीता हरण तात जनि कहहु पिता सन जाइ।

कहा है— (पं० सच्चिणीनन्दन त्रिवेदी पतित

समाधान

पाये राम दर्श मनु ज्ञान औ विराग योग,
जप तप योग भोग दिव्य सिन्धु मथके।
चारो क्रिया चारों फल चारिहु अवस्थाविभु,

गृही रहि पाये धन्यभाग दशरथ के ॥
त्यागि के 'कुमार' राम राम कहि देह त्यागि,
अर्चिरादिमार्ग चले पूजा लेत पथ के ।
वाही मग सबै भक्त चलि रामधाम जात,
रहैं जे भरोसे एक रामनाम गथ के ॥

श्री रामचरित मानस में वेदान्त सिद्धान्तानुसार जीवों को अनन्त मानते हुए उनमें तीन श्रेणी का होना बतलाया गया है—

परबश जीव स्वबश भगवंता । जीव अनेक एक श्रीकन्ता ।
विषयी साधक सिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग वेद बखाने॥

इन त्रिविधि जीवों के मुक्त श्रेणी वाले जीवों में मोक्षाधिकारी नाम से एक उपभेद है । जैसे ब्रह्मा, शिव, सूर्य, यम, आदि मुख्य देवगण, मरीचि, अत्रि आदि प्रजापतिगण, स्वायम्भुव मनु आदि चतुर्दश मनु और प्रत्येक मन्वन्तर के नारद, बशिष्ठादि सप्तर्षिगण तथा और और भी कितने ऐसे गण हैं । ये लोग सृष्टि के कार्य कर्ता हैं एतदर्थ महा प्रलय से पूर्व ये लोग आत्यन्तिक मुक्ति नहीं पासकते, ऐसा शास्त्रों में भगवदाज्ञा का उद्घोष है । और महा प्रलयान्त में अवश्य मोक्ष पाजायेंगे, अन्य वद्ध जीवों की तरह सूक्ष्म प्रकृति में लीन न रह जायेंगे । इसीलिये ये मोक्षाधिकारी कहाते हैं । मोक्षाधिकारियों की अव्याहत (अछेक) गति रहती है, वे अपने ब्रह्माण्डभरमें स्वेच्छानुसार जहां चाहें वहां घूम सकते हैं यथा—

यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम् । (वेदांत दर्शन ३।३।३१)

व्यास के इस सूत्र पर गोस्वामी जी के परदादा गुरु

भगवदवतार जगद्गुरू स्वामी श्री रामानन्दाचार्य जी ने आनंद भाष्य में लिखा है कि—

अधिकारिकाणान्तुवशिष्ठादीनां वेदप्रर्वतनादिषु लोकव्यवस्था हेतुष्वधिकारेषु ब्रह्मणा नियुक्तानां यावदधिकारमवस्थितिस्त-दारम्भकं कर्मापि यावदधिकारमबतिष्ठते ।

इसी सूत्र पर भाष्य करते हुये श्रीशंकराचार्य ने कहीं का एक श्लोक भी संग्रह किया है--

ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे ।
परस्यान्ते कृतात्मानः, प्रविशन्ति परंपदम् ॥

इतिस्मरणात् (शांकरभाष्य)

यह सबको ज्ञात है कि श्री दशरथ जी स्वायंभुव मनु के अवतार हैं और वे मनु मोक्षाधिकारियों में एक प्रधान व्यक्ति हैं, इसी से उनका मोक्ष धाम जाना नहीं हुआ । वे सुरधाम इन्द्रलोक ही रह गये । यदि वे हरिधाम चले जाते तो पद्म पुराण उत्तर खंड अध्याय २४२--

स्वायंभुवो मनुःपूर्वं द्वादशार्णं महामनुम् ।
जजाप गोमती तीरे नैमिषे बिमले शुभे ॥८॥
तेन वर्षसहस्त्रेण पूजितः कमलापतिः ।
मत्तो वरं वृणीष्वेति तंप्राह भगवान् हरिः ॥६॥
ततः प्रोवाच हर्षेण मनुः स्वायंभुवो हरिम् ।
पुत्रस्त्वं भव देवेश त्रीणि जन्मानि चाच्युत ॥१०॥
त्वां पुत्रलालसत्वेन भजामि पुरुषोत्तमम् ॥११॥

के अनुसार तीसरी वार बसुदेव अथवा हरिव्रत कैसे होते, एकवार कश्यप अदिति, दूसरीबार दशरथ कौशल्या होकर

भगवान् के पिता माता हो चुके हैं तीसरी वार भगवान् का पिता बनना बाकी है। यदि दशरथ जी का मोक्ष उसी समय हो जाता तो फिर कैसे भगवान का बरदान पूरा होता, क्योंकि वद्ध जीव यदि मुक्त होजाता है तो पुनः वह--

न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते। छा०उ० २।१५।१
अनावृत्ति शब्दादनावृत्ति शब्दात्। :वेदान्त दर्शनः ४।४।२२
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ :गीताः १५।६

के अनुसार इस एक पाद विभूतिमें आही नहीं सकतेथे।

सुरधाम और हरिधाम दोनों दो हैं, सुरधाम मायिक और हरिधाम अमायिक हैं। गीधराज जटायू जी पूर्वनिश्चित मोक्षाधिकारी कोई विशेष सृष्टिकार्य कर्ता नहीं थे अतः ये हरि-धाम गये मर्त्यलोक से हरिधाम जाने में बारह प्रधान स्थान पड़ते हैं उनमें ग्यारहवाँ स्थान सुरधाम है—

"सत्संगाद्भवनिस्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं प्रपद्यात्मवान्,
प्रारब्धं परिभुज्य कर्मसकलं प्रक्षीणकर्मान्तरः -
न्यासादेव निरंकुशेश्वर दया निर्लूनमायान्वयः,
हार्दानुग्रहलब्धमध्यधमनिद्वाराद्बहिर्निर्गतः ॥१॥
मुक्तोऽर्चिदिनपूर्वपक्षषडुदङ्मासाब्दवातांशुमान्।
ग्लौ विद्यु द्वरुणेन्द्रधात्रमहितः सीमान्तसिन्ध्वाप्लुतः।
श्रीसाकेतमुपेत्य नित्यमजडस्तस्मिन्परब्रह्मणः,
सायुज्यं सनवाप्य नन्दतिसमं तेनैव धन्यः पुमान् ॥२॥

अध्यातम शास्त्र में इसी का नाम अर्चिरादि मार्ग है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी यही बतलाया गया है—

अग्निज्योतिरहः शुक्लः षण्मासाउत्तरायणम्।

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदोजनाः ॥गी० ८।२४:
स ह्याश्रमैर्विरजिज्ञास्यः समस्तैरेवमेवतु ।
द्रष्टव्यस्त्वथमन्तव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः ॥१९१॥
य एनमेवं विदन्ति ये बारण्यकमाश्रिताः ।
उपासते द्विजाः सत्वं श्रद्धया परया युताः ।'१९२॥
क्रमाते सम्भवन्त्यर्चिरहः शुक्लं तथोत्तरम् ।
अयनं देवलोकं च सवितारं सवैद्युतम् ॥१९३॥
ततस्तान् पुरुषोऽभ्येत्य मानसो ब्रह्मलौकिकान् ।
करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते ।१९४ :याज्ञ० स्मृ०३॥

अन्यस्थलों पर भी यही बतलाया गया है—

अर्चिरहः सितः पक्षः उत्तरायणवत्सरौ,
मरुद्रवीन्दवोविद्युद्वरुणेन्द्रचतुर्मुखाः ।
एते द्वादशधीराणां परधामातिवाहिकाः,
वैकुण्ठप्राधिकाविद्यद्वरुणेन्द्रै स्त्वनुग्रहः ।

श्रुतियों में इस क्रम का किंचित् स्पष्टीकरण है—

तेऽर्चिरभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरहन् आपूर्माणपक्षम् ।
आपूर्माणपक्षाद् यान् षण्मासादनुङ्ङादित्य एति
मासेभ्यः सम्वत्सरं सम्वत्सरादादित्यम् ।
आदित्याच्चात्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः
सएनान् ब्रह्मगमयति, एवदेवपथो ब्रह्मपथः ।
एतेन प्रतिपद्यमाना इमंमानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ॥
(छा० उ० ४।१५।६)

सएतं देव यानं पंथानमासाद्याग्निलोकमागच्छति ।
स वायुलोकं स वरुणलोकं स आदित्य लोकँ स चन्द्रलोकं

स प्रजापति लोकंम स ब्रह्म लोकम् ॥कौ० ब्रा०उ० १।३॥

हरिधाम जाते समय मार्गमें सुरधाम में श्री दशरथ जी मिलेंगे ही अतः श्रीरामजी ने गीधराज जटायू जो को मना कर दिया कि—

सीता हरण तात जनि कहेहु पिता सन जाइ ।

शंका २५

सती सावित्री ने अपने मृतक पति को जिला लिया था। दशरथ की रानियों ने दशरथ को क्यों नहीं जिला लिया ? पतिव्रता नारियां पति के साथ सती हो जाती थी, दशरथ की रानियां क्यों नहीं सती हुईं क्या वे पतिव्रता नहीं थीं ?

(श्री चरणसिंह अध्यापक कांसा)

समाधान

कौशल केकय मगधेश सुता । हरिभक्ति-महा-पति प्रेम रता ॥
प्रणमौं अजनन्दन की घरनी । जिनकी न कहूँ जग में बरनी ॥

(क) सावित्री सती संसार में एक अपवाद रूप (अपवाद नियम विशेष जो व्यापक नियम से भिन्न) थीं । पौराणिक संसार में अनगिनती सती चरित्रों में शायद दूसरा उदाहरण वैसा नहीं है। परन्तु अन्य अनन्त पतिव्रताओं पर आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी अंगुश्तनुमाई नही किया नही कर सकता। न जाने आप कैसे अधपके अध्यापक हैं जो सामान्यतः अपवादक नियम तक को भी नहीं जानते। मेरे बिचार से तो आप मास्टर हो सकते हैं अध्यापक नहीं ।

(ख) सावित्री निःसन्तान थी इसलिये सत्यवान को यमराज से वापस पा सकी थी। यदि प्रजावती होती तो यमराज

कभी सत्यान को वापस न करते। ऐसा सत्यान के पौराणिक आख्यान से सिद्ध हैं। इधर दशरथ जी की तीनों रानियाँ प्रजावती सन्तानवती थीं। अतः जिलाने का कोई कारण ही नहीं था। रघुकुल में केवल सन्तान मात्र के लिये विवाह होता था

प्रजायै गृह मेधिनाम्। (रघुवंश सर्ग १ श्लोक ७)

(ग) यह भी कहा जा सकता है कि यमराज आदि पर ही सती का प्रभाव चल सकता है परब्रह्म पर नहीं। सत्यवान का प्राण यम ले जा रहे थे। और दशरथ का प्राण छूटा है परब्रह्म से वरदान मांग लेने के कारण। नारद और वृन्दा का श्राप भगवान पर असर नही करता, भगवान् ने स्वयं ही स्वीकार कर लिया है —

'तासु श्राप हरि कीन्ह प्रमाना। मम इच्छा कह दीन दयाला॥'
पुष्टि में भृगु श्रापात्मक पौराणिकाख्यान द्रष्टव्य अथच मननीयहै।

(घ) सामान्य धर्म से विशेष धर्म बलवान होता है यह सार्वभौमिक नियम है। पति के साथ सती होना सामान्य धर्म है और भगवदाराधन विशेष धर्म है । सामान्यधर्मानुसार दशरथ की रानियाँ सती होने जा रही थीं परन्तु श्री भरतजी ने विशेष धर्म की महत्ता बताकर सती नहीं होने दिया।

गहि पद भरत मातु सब राखीं। रहीं राम दरशन अभिलाखी॥

इस समाधान को मनन पूर्वक पढ़ियेगा तो आपको निश्चय हो जायगा कि दशरथ की रानियां परम पतिव्रता थीं, इनसे संबंधित श्री गोस्वामी जी का एक एक शब्द वेदाधिक सत्य एवं तथ्य पूर्ण है कि—

कौशल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेमदृढ़ हरि पद कमल बिनीत ॥

शंका २६ मा०म० ४।१०

उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ॥

यह चौपाई अयो० १२२। २ आर० ७।३ दो बार आई है। दो बार क्यों लिखी गई ? ('व्याकुल' अयोध्या)

समाधान

मृगयाभिरतं वीरं वयस्यैः परिवेष्टितम्।
धावन्तं धावयन्तश्च कदा पश्यामि राघवम् ॥

श्रुतियों में ब्रह्मजीव और प्रकृति यह तीन तत्व अनादि बतलाये गये हैं—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥
(ऋ० १।६४।२०, अथर्व ९/९।२०, निरु० १४।३०, श्वे० उ० ४/६)

भोक्ताभोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मचैतत् ॥
(श्वेताश्वतरोपनिषत् १।१२)

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः जनयती स्वरूपाम्।
अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोग्यामजोऽन्यः ॥
(श्वे० उ० ४।५)

अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्,
तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः ॥ (श्वे० उ० ४।९)

इत्यादि : इन तीनों के पर्यायवाची भी अनेक हैं। प्रकृति तत्व का प्रसिद्ध पर्याय माया है। स्वयं श्रुति ही कहती है कि—

मायां तु प्रकृतिं विद्धि मायिनं तु महेश्वरम्। (श्वे० ४।१०)

सूक्ष्म और स्थूल भेद से प्रकृति की दो अवस्थायें हैं। प्रलयावस्था में जबकि प्रकृति में कोई क्रिया कलाप नहीं होता उस समय उसका नाम सूक्ष्माचित् या सूक्ष्माप्रकृति रहता है और सृष्टिकाल में जबकि ब्रह्माण्ड रचनात्मक क्रिया कलाप होते रहते हैं उस समय वह स्थूलाचित् या स्थूलाप्रकृति कहाती है। और माया नाम तो प्रत्येक दशा में है ही।

माया प्रकृति जड़ है वह दोनों अवस्था में ब्रह्म के आधीन ही रहती है, कभी भी वह ब्रह्मसे प्रबल नहीं हो सकती। उसका सम्पूर्ण क्रिया कलाप ब्रह्म संकल्पाधीन रहता है, वह ब्रह्म को कभी भी अभिभूत नहीं कर सकती अर्थात् ब्रह्म कभी भी अविद्योपहित, माया शबलित नहीं होता है। माता सदैव ब्रह्म के पीछे ही रहती है, परन्तु जीव से तो सूक्ष्म स्थूल दोनों अवस्था में प्रबल ही रहती है अतएव जीव के आगे ही रहती है। इसी तथ्य को श्री गोस्वामीजीनेइस दृष्टान्त द्वारासबको समझाया है।

श्री सीताजी प्रकृति माया नहीं है वे तो परब्रह्म की आद्या आह्लादिनी शक्ति है—

"गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम पद...... ॥"

ब्रह्म से अभिन्न विग्रह हैं और श्री लक्ष्मणजी भी जीव नहीं हैं वे तो साक्षात् श्रीमन् नारायण क्षीराब्धीश शेषाधिप शेषशायी है (देखिये मानस संघ से प्रकाशित मेरा मानस सिद्धान्त ग्रन्थ) श्रीरामजी परब्रह्म हैं। श्रीरामजी के अवतार काल में उस चिन्मयानन्द विग्रह में माधुर्यैश्वर्य का सम्मिश्रण होकर लीला का प्रदर्शन होता है। बालकाण्ड और अयोध्या काण्ड

की सभी लीलाएँ मुख्यतः माधुर्यमय ही होती रही, जहाँ जहाँ ऐश्वर्य ब्यंजकलीलायें हैं वहां वहाँ माधुर्य का पुट है। देखिये माताओं का उद्गार बालकाण्डान्त में—

देखि श्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम वचन सब माता॥
मारग जात भयावन भारी। किहि बिधि तात ताड़का मारी॥
घोर निशाचर विकट भट, समर गनैं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु॥
मुनि तिय तरी लगति पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥
कमठ पीठि पवि कूट कठोरा। नृप समाज महँ शिव धनु तोरा॥
विश्व विजय यश जानकि पाई। आये ब्याहि सहित सब भाई॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौशिक कृपा सुधारे॥

आश्चर्य प्रगट करने वाली सम्पूर्ण अमानुषीलीलाओं को कौशिक कृपा रूपी माधुर्य में छिपा लिया। इससे माताओं को अधिक देर तक आश्चर्य न रहा तुरन्त समाधान होगया। और लंका से लौटने पर वे ही माताएं—

'सब रघुपति मुखकमल बिलोकहिं।'
कौशल्या पुनि पुनि रघुबीरहिं। चितवति कृपासिंधु रणबीरहिं॥
हृदय विचारति बारहिं बारा कवन भांति लंकापति मारा॥

अर्थात् अयोध्या से जनकपुर तक के अमानुषीय कर्मों के लिए साथ में होने से कौशिक कृपा रूपी भांति थी, परन्तु बन में तो कोई भांति मालूम नहीं पड़ती। अतः—

अति सुकुमार युगल ममवारे। निशिचर सुभट महाबल मारे॥
लक्ष्मण अरु सीता सहित प्रभुहिं विलोकत मातु।'
और प्रभु को विलोकते विलोकते तब ऐश्वर्य स्मरण हो आते ही—

"परमानन्द मगन मन पुनि पुनि पुलकत गात।"
श्रीरामजी का तो कोई भी नाम ऐश्वर्यात्मक अर्थ वाला हो सकता है एवं हो ही जाता है परन्तु "सिय और लखन" यह दोनों नाम तो नितान्त माधुर्य के द्योतक हैं। ये दोनों नाम दुलार-प्यार सम्बन्धी है इसीसे बाल और अयोध्या इन्हीं दो काण्डों में ये दोनों नाम पाये जाते हैं। अन्य पाँच काण्डों में सीय और लखन शब्द हैं ही नहीं।

अयोध्या काण्ड और आरण्य काण्ड की एक चौपाई होते हुए भी अयोध्या काण्ड में तो सिय पाठ है और आरण्य काण्ड में श्री शब्द पाठ है इसलिये कि लीला के समय माधुर्य और ऐश्वर्य दोनों दशा में श्री जानकी जी सदैव श्रीराम जी के पीछे और लक्ष्मणजी के आगे वैसे ही रहती है जैसे कि स्थूल और सूक्ष्म दोनों अवस्थावों में अचित् (माया) ब्रह्म के पीछे ब्रह्म के अधीन और जीव के आवो । (जीवसे प्रबल) रहती है। यही वेदका तत्व इसमें निहित है जिससे कि दोनों जगह एकही चौपाई केवल एक शब्द के परिवर्तन के साथ है कि—
उभय बीच श्रीसिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

शंका २७

श्री भरत जी ने शृंगबेरपुर में—

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥

कैसे—जब कि तापस वेष जनक सिय देखी—

"बलकलबसनजटिलतनुस्यामा। जनुमुनिबेषकीनरतिकामा॥"

मुनि-तापस वेष में 'कनक बिंदु' कैसे ?

समाधान

कमलालया कमला, प्रभूपद कमल आलय ह्वै रहीं ।
प्रभु पद कमल से गंग जल, जब कमल जल से सब कहीं ॥
पद कमल ध्याये ज्ञान, रवि-विकसै–कमल रवि जगत में ।
प्रभु श्याम रूप 'कुमार' नाशत श्यामता जो त में ॥

श्रीराम जी ने बन जाते समय जब कोप भवन में मझली माता कैकेयी जी के दिये हुए कटि वस्त्र और उत्तरीय दोनों मुनि वस्त्रों को धारण कर लिया तो उस समय श्री सीता जी मुनि वस्त्रों का पहिनना (पंचा और ब्रह्मगांती बाँधना) नहीं जानती थीं इसलिये वे हाथ में तापसी वस्त्रों को लेकर लज्जित एवं अवाङ्मुखी खड़ी रह गईं, तब श्रीरामजी ने सीता जी के रेशमी वस्त्रों के ऊपर तपस्विनी के काषाय वस्त्रों को बाँध दिया। देखिये वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकांड—

स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्याप्रति गृह्यते ।
सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह ॥३७।७
अथात्मपरिधानार्थ सीता कौशेयवासिनी ।
संप्रेक्ष्य संत्रस्ता पृषती वागुराभिव ॥ ६
सा व्यपत्रपमाणेन प्रगृह्य च सुदुर्मनाः ।
कैकेय्याः कुशचीरे ते जानकी शुभलक्षणा ॥ १०
अश्रुसम्पूर्णनेत्रा च धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी ।
गन्धर्वराजप्रतिमं भर्तारमिदब्रवीत् ॥ ११
कंथ नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिन ।
इति ह्यकुशला सीता सा मुमोह मुहुर्मुहुः ॥ ८२
कृत्वा कण्ठेस्म साचीरमेकमादाय पाणिना ।

तस्थौ ह्यकुशला तत्र व्रीड़िता जनकात्मजा ॥ १३
तस्यास्तत्क्षिप्रमागत्य, रामो धर्मभृतांवरः ।
चीरं बबंध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम् ॥ १४

इस पर सभी उपस्थित नर नारी रोने लगे और वशिष्ठ तथा दशरथ जी ने तो कैकेयी जी को बहुत ही फटकारा और गालियाँ दी । अन्त में दशरथजी ने कोशाध्यक्ष को आज्ञा दिया कि वैदेही के लिये चौदह वर्ष तक के लिये बहुमूल्य अच्छे-अच्छे कपड़े और बहुमूल्य भूषण लावो । तब कोशाध्यक्ष ने लाकर दिया और श्री सीताजी ने उन्हें वहीं धारण किया अर्थात् उन्हीं मुनि वस्त्रों के ऊपर से ही राज-प्रदत्त वस्त्राभूषणों को पहन लिया—

राजा सत्वरमाहूय व्यापृतं वित्तसंचये ।
उवाच देशकालज्ञो निश्चितं सर्वतः शुचिः ॥३६।१४
वासांसि चव राहाणि भूषणानि महान्ति च ।
वर्षाण्येतानि संख्याय वैदेह्याः क्षिप्रमानय ॥१५
नरेन्द्रे णैवमुक्तस्तु गत्वा कोशगृहं ततः ।
प्रायच्छत्सर्वमाहृत्य सीतायै क्षिप्रमेवतत् ॥
सा सुजाता सुजातानि वैदेही प्रस्थितावनम् ।
भूषयामास गात्राणि तैर्विचित्रैर्विभूषणैः ॥१७
व्यराजयत वैदेही बेश्म तत्सुविभूषिता ।
उद्यतोंऽशुमतः काले स्वे प्रभे र्वावस्वतः ॥१८

इसी कारण शृंगबेरपुर में जब कुश की साथरी (स्तरण-बिछावन) पर श्री जानकी जी रात में सोईं तो वस्त्रमें टँके हुये अनेको स्वर्ण बिन्दु कुश की रगण से वस्त्र में से छूटकर गिर

गये थे, उन्हीं को भरत जी ने देखा था।

प्रातः काल जब श्रीराम जी ने वटक्षीर मँगाकर सबंधु जटा बनाया तो उपलक्षण से सिद्ध है कि सीताजी उसी समय राजकीय वस्त्राभूषणों को त्याग कर काषायम्बर धारण करके तपस्विनी बन गईं थीं। इसीलिये सुमन्त जी जब लौटकर अयोध्या पहुँचे तो महाराज दशरथ जो बार बार तपस्विनी तपिस्वनी कहकर सीताजी की बात कही—

जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी ॥५८।३४

तथैव सीता रुदती तपस्विनी.........।३७

यही कारण है कि शृंगवेरपुर में कनक विन्दु गिरे थे और चित्रकूट में—

तापस वेष जनक सिय देखी।

और चित्रकूट से आगे बढ़ने से तो परम सिद्धा तपस्विनी श्री अनुसुइया जी ने जो—

दिव्य बसन भूषण पहिराये।

उन्हीं वस्त्र भूषणों में से हरण काल में कुछ भूषण वस्त्र खण्ड में बाँधकर सुग्रीव के पास प्रक्षेप किया था। मा०मा०१८।२

शंका २८

तुम कहं भरत कलंक यह हम सब कहं उपदेश॥

यह महर्षि भरद्वाजजी का कथन भरतजी के किस कलंक की ओर इशारा कर रहा है जब कि भरत जी को भरद्वाज जो भी सर्वथा निर्दोष मानते हैं (लखनलालखरेपरवारीबाँझनवाड़ा)

समाधान

वीणा वादन तत्परं सुरसिकं साहित्य रत्नाकरं.

सांगीतागमसारधारनिलयं सांवर्तसान्द्रप्रभाम् ।
नित्यं श्रीरघुनाथध्याननिरतं पादाब्जसंराधकं,
भक्ताग्राचार्यप्रभुं भजेऽहमनिशं श्रीमाण्डवीबल्लभम् ॥

श्री गोस्वामी जी महाराज ने दोहावली ग्रन्थ में कलंक शब्द का एक अर्थ सिद्धि भी किया है। यथा दोहावली २६०—

करत न समुझ झूठ गुण सुनत होत मति रंक ।
पारद प्रगट प्रपंच मय सिद्धिउ नाँउ कलंक ॥

अतः कलंक शब्द का पर्याय :साधन साध्याः सिद्धि शब्द भी हो सकता है।, अस्तु, महर्षि श्री भरद्वाज जी कहते हैं—

तुम तौ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू ॥
तुम कहं भरत कलंक यह हम हब कहँ उपदेश ।
राम भक्ति रस सिद्धि हित भा यह समय गनेश ॥

अर्थात् हे श्रीभरत लालजी ! दूसरों के मत से तो आप-

राम प्रेम मूरति तनु आही ॥

श्री राम प्रेम की साक्षात प्रतिमूर्ति हैं ही। आपके मत को ज्ञानी लोग ऐसा मानते ही हैं कि—

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहु निहारे ॥
साधन सिद्धि राम पद नेहू। मोहि लखि परत भरत मत येहू ॥

यह जगद्विख्यात ज्ञानियो का निर्णय है। और मेरे मतसे भी साक्षात् श्री रामस्नेह प्रेम के अवतार-विग्रह ही आप हैं। अतः तुमको तो यह रामभक्ति कलंक-सिद्धि ही है : परन्तु तुम्हारा यह राम प्रेम मय आचरण व्यवहारः हम सबको :माया त्याग काः उपदेश दे रहा है आगे चल कर ब्रह्मर्षिप्रवर श्री वशिष्ठजी ने भी कहा है कि—

समुझब कहब करब तुम जोई। धर्मसार जग होइहिं सोई ॥

अतः आपके दर्शन कालीन यह समय रामभक्ति रस की सिद्धि (नित्यभगवत्कैंकर्य प्राप्ति आत्यन्तिक मुक्ति) के लिये श्री-गणेश अर्थात् प्रारम्भिक काल हुआ :आत्यन्तिक मोक्षः अर्थात् अक्षुण्ण नित्य भगवत कैंकर्य सानिध्य प्राप्ति ही रामभक्ति रस की सिद्धि है। और श्री भरतजी के लिए तो कहाही गयाहै कि-

भरत दरश मेटा भव रोगू।

अतः यहां कलंक शब्द कुख्यात दोष के अर्थ में नही है अपितु भक्तिरस की सिद्धि के अर्थ में है। (मा०म० ११।३)

शंका २६

शिरधरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धर्म यह नाथ हमारा ॥

यह चौपाई बाल० ७७।२ अयो० २१२।३ दोबारा क्यों लिखी गई। (व्याकुल जी अयोध्या)

समाधान

श्रीमद्रामप्रसादाख्यं बिन्द्वाचार्यं जगद्गुरुम्।
प्रस्थानभाष्यकर्तारं प्रपद्ये रामरूपिणम् ॥

:कः भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भक्तवर अर्जुन से बतलाया कि-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरे जनाः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ :गीताः३।२१

यह श्रेष्ठानुचरण नियम सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है। चाहे देवलोक हो और चाहे नर लोक। अस्तु

यह तो सभी आस्तिक महानुभाव एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि देव लोक में सर्वश्रेष्ठ देवता श्री शिवजी (महादेव) हैं और मानस प्रेमियों के लिये तो प्रमाण की आवश्यकता ही

नही है। पुराणों में तो कहीं कहीं ब्रह्माजी भी शिव जी के बराबर बताये गयेहैं परन्तु मानसमें तो सर्वत्र एवं सदैव ब्रह्माजी से बड़े ही शिवजी बताये हैं। वे देवाधिदेव महादेवजी भी जिनको अपना पूज्य मानेगें उनकी श्रेष्ठता में कोई कसर ही नहीं रह सकती,और शिवजी का वाक्य श्रीरामजी सेहै कि आपकी आज्ञा में अनुचित, उचित, कार्याकार्य विकार्य आदि का बिचार करना भी महान अधर्म है ॥ अतः—

शिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धर्म यह नाथ हमारा॥

इसी तरह नरलोक में मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ राजा नरदेव हैं—

नराणां च नराधिपः। (गीता १०।२७)

क्योंकि वह— 'ईश अंश भव परम कृपाला ॥'

है, और राजा से भी श्रेष्ठ तपस्वी (विरक्त) ब्राह्मणहै।

भगवान ने कहा है कि—

अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणे मामकी तनुः। अत्रि स्मृतिः

यही गोस्वामीजी का मत है—

प्रभु के बचन वेद बुध सम्मत मम मूरति महिदेव मही है।

:विनय पत्रिका:

यद्यपि कुटुम्बी ब्राह्मण भी सर्वश्रेष्ठ हैं परन्तु उसके ऊपर राज शासन विरक्त की अपेक्षा अधिक कड़ाई से लागू होता है। देखिये वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड सर्गएकसौ नौमें श्री रामजी ने चित्रकूट में जाबालि को कितनी फटकार दी थी दशरथ जी के अष्ट पुरोहितों में से थे। परन्तु कुटुम्बी थे, राज्य के वैतनिक कर्मचारी थे, षोडश मंत्रियों में से एक थे। यदि जाबालि विरक्त तपस्वी होते तो क्या श्री रामजी उस तरह फट-

कार कर कह सकते थे कि—
निन्दाम्यहं कर्म पितुस्तद् यस्त्वामगृह्द्विषमस्थबुद्धिम् ।
वा०रा० २।१०६।३३

अतः कुटुम्बी ब्राह्मण राजा से वर्णानुसार आंशिक श्रेष्ठ हैं और विरक्त तपस्वी ब्राह्मण वर्ण एवं आश्रम सर्व प्रकारेण राजा से सर्वथा श्रेष्ठ हैं ।

भरत जी यद्यपि मन से स्वयं को राजा नहीं मानते थे परन्तु चित्रकूट जाते समय उन्हे सम्पूर्ण राज्यकी बागडोर अपने हाथ में बलात् लेनी पड़ी थी और राज्य का सारा प्रबन्ध बतौ राजा के करना पड़ा था और किये भी—
घरपुर देश राखि रखवारे । भरत शोध सबहीं कर लीन्हा ।

इत्यादि । अतः उस समय भरत जी राजा थे और भरद्वाज जी विरक्त तपस्वी ब्राह्मण, एतदर्थ राजा से सर्वथा श्रेष्ठ थे । अतएव भरतजी ने महर्षि भरद्वाज के सत्कार को स्वीकार करते हुये कहा कि=
शिर धरि आयसु करिय तुम्हारा । परम धर्म यह नाथ हमारा॥

आप यह भी कह सकते हैं कि महर्षि भरद्वाज की दी हुई बस्तुओं को भरतजी अपने शारीरिक व्यवहाह में नहीं लाये और शिवजी ने व्याह कर लिया अतः भरतजी का आज्ञापालन कहां हुआ ? तो आपको मानस के अक्षरों पर ध्यान देना चाहिये । रामजी ने शिवजी से कहा था कि--

जाइ विवाहहु शैलजहिं ।

अतः शिवजी ने जाकर विवाह किया और भरद्वाज जी ने कहा था कि—

कन्द मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥

एक तो लेहु कहा खाहु नहीं, दूसरे कन्द मूल फल फूल कह कर दिया—

स्त्रक चन्दन वनितादिक भोगा ।

अतः श्री भरत ने लिया तो परन्तु उनको भोगा नहीं । व्यवहार में नही लाये । निष्कर्ष यह कि देव लोक में जैसे भगवान् श्री रामजी सर्व श्रेष्ठ हैं उसी तरह नर लोक में विरक्त तपस्वी ब्राह्मण सर्व श्रेष्ठ हैं । इसी लिये दो जगह एकही चौपाई रखी गई, कुछ कवि सम्राट श्री गोस्वामी जी के शब्दकोष में शब्दों के कमी से नहीं । (मा० म०)

शंका ३०

सो गोसाइं जिहि बिधि गति छेंकी ।सकइ को टारि टेक जो टेकी

तो वशिष्ठ जी ने विधाता के लेख को कब कब मेटा था अर्थात् विधि की गति कब छेंकी थी (पं० शंभुप्रसाद तिवारी)

समाधान

रघोः बंशोत्तंसं कुशिकमखरक्षणव्रतधरं,
महाबीरं धीरं निमिकुलपताकाधुरवहम् ।
गतं सिन्धोः पारं सकलखलपौलस्त्यनिहतं,
नमामीशं रामं सततमभिरामं श्रीपतिम् ॥

इस पर लोग बहुत सी ऐसी कथायें कहा करते हैं जिनकी संगति इस प्रसङ्ग पर नहीं बैठती, जैसे द्वापर के स्थान पर त्रेता युग को नियत कर देना, विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि बनाना, दशरथ को साठ हजार बर्ष की आयु में पुत्र देना आदि । परन्तु ये उक्त कल्पनायें यहाँ इस लिये ठीक नहीहैं कि जिज्ञासित चौपाई

के ऊपर की चौपाइयों में श्री भरतजी का कहना अपने पूर्वजों ही मात्र के सम्बन्ध में है कि—

भानुबंश मे भूप घनेरे। अधिक एक ते एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। कर्म शुभाशुभ देइ बिधाता॥
दलिदुख सजइ सकल कल्याना। असि असीस राउरि जगजाना

अर्थात् आपके आशीर्वाद ने सूर्यबंशी राजाओं के भालोल्लिखित विधिकृत सारे अमङ्गल दुःखों को नष्ट करके समस्त कल्याणों का सृजन किया है। आपके आशीर्वाद के इस (दुःख नाशक कल्याणोत्पादक) प्रभाव को समस्त जगत जानता है। तात्पर्य यह कि मैं चापलूसी के रूप में अर्थवादोक्ति नहीं कर रहा हूँ।

युग परिवर्तन की कल्पना तो सर्वथा मिथ्या ही है, क्योंकि जहां कहीं ग्रन्थों में युगों का वर्णन है वहां सर्वत्र कृतयुग के बाद ही त्रेता का, त्रेता के बाद ही द्वापर का और द्वापर के बाद कलि का वर्णन है। कल्पादि में ही इसी तरह की व्यवस्था की जाकर युगों की आयु निर्धारित करदी गई है। सन्ध्यांश को लेकर कृतयुग की आयु मानव बर्षों से सत्रहलाख अट्ठाईस हजार बर्ष, त्रेता की आयु बारह लाख छानबे हजार बर्ष-द्वापर की आयु आठ लाख चौंसठ हजार वर्ष और कलियुग की आयु चार लाख बत्तीस हजार बर्ष की बताई गई है। इस आयु और क्रम की व्यवस्था का परिवर्तन किसी ने भी बीच में नहीं किया। कुछ लोग अपने अज्ञान के कारण द्वापर शब्द से दूसरा युग और त्रेता शब्द से तीसरा युग मानकर युग परिवर्तन की अनर्गल कल्पना कर बैठे हैं। वास्तव में जिस

युग में धर्म के सभी अङ्गों की प्रधानता रहती है अर्थात् धर्म के सभी अङ्गों का पालन कड़ाई से किया जाता है उसका नाम कृत किंवा सत्ययुग है, जिस युगमें धर्मका एक चतुर्थांश अर्थात् एक चरण तप शिथिल हो जाता है उस युग का नाम त्रेता है अर्थात् वह धर्म के तीन चरणों वाला है, इसी तरह जिस युग में धर्म के दो चतुर्थांश दो चरण तप और यज्ञ का ह्रास होकर केवल दो ही चरण पालित होते हैं उसे द्वापर अर्थात् धर्म के दो चरणों वाला युग कहा जाता है और जब धर्म के सभी (चरण) अङ्ग नष्टप्राय हो जाते हैं केवल कलि अर्थात् पाप या कलह ही जिसका प्रधान धर्म बन जाता है उसे कलि अर्थात् पाप या कलह का युग कहा जाता है—

'कलि केवल मल मूल मलीना।' 'कलि प्रभाव बिरोध चहुँओरा।'
'कलिमल ग्रसे धर्म सब···।' (रा० च० मा०)
'कलि······कलहे युगे।' (मेदिनीकोष)

वेद ऐत० ब्रा० ७।३।१५ भी तो यही कहता है कि—

कलिश्शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेताभवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥

अतः बशिष्ठजी को युगपरिवर्तनकारी बतलाना शास्त्र पुराणानभिज्ञता का परिचायक है। और मुनि बिश्वामित्र काब्रह्मर्षित्व तो उनके तप शस्त्रास्त्र त्याग आदि से हुआ, वशिष्ठ के आशीर्वाद से नही। और विश्वामित्र भानुवंशी भी नहीं थे। दशरथ के पुत्रावरोध मुक्तत्व के कारण में वशिष्ठ के आशीर्वाद की कोई बात नहीं आती अपितु शृङ्गी ऋषि कृत यज्ञ कार्य निमित्त बनकर अग्नि के प्रादुर्भाव पूर्वक चरु का वितरण कराना

है। हाँ सुद्युम्न (इला) भानुवंशी थे और उनके दोनों बार का (स्त्रीत्व एवं पुंसत्व) परिवर्तन वशिष्ठ के आशीर्वाद एवं तपः प्रभाव से ही हुआ था।

कृतवासीय रामायण के अनुसार पुरुष संयोग बिना ही उत्पन्न होने के कारण राजा भगीरथ के शरीर में अस्थि नहीं थी, वह कमी बशिष्ठ के आशीर्वाद से दूर होगई।

महामहोपाध्याय पं० शिवलाल पाठक ने मानस मयंक और मानस अभिप्राय दीपक टीकाओं में किसी उपौपपुराण के आधार पर लिखा है कि—

गाढ़े गही सुदक्षिणे गुरू बुझाये हेत।
सुनि के मृत्यु दिलीप कै मेरे बिधि को जेतु ॥ मा० म०
सजी दिलीप ललाट पर रची दुहिन कर अङ्क।
पर्ब मुक्त सब सुनि श्रवण, मुनि मेटी निस्सङ्क ॥ अ.दी.७१

अर्थात् दिलीप के ब्याह में बड़ी मजबूती से सुदक्षिणा का गठबंधन हुआ, वशिष्ठ के पूँछने पर मागधी पण्डितों ने बताया कि 'गांठ खुलते ही इस कन्या का पति मर जायेगा, ऐसा योग पड़ा है।' ऐसा सुनते ही बशिष्ठ ने दिलीप को चिरंजीवी होने का आशीश देकर मृत्यू योग मिटाकर ब्रह्मा को (जेतु) जीत लिया।

इसी तरह एक और उपौपपुराणोपाख्यान पारम्परिक अनुश्रुत है कि दिलीप पुत्र रघु का मृत्यू योग वशिष्ठ के अशीश से मिट गया। जिसका स्पष्टीकरण महात्माओं ने इस तरह किया है कि—रघु के जन्म समय में ऐसा विधि कृत योग पड़ा था कि विवाह काल में सातवीं भांवरी के पूरे होते ही रघु

का सिर फट जायेगा। इसी डर से महाराज दिलीप रघु का ब्याह नहीं होने देते थे। जब वशिष्ठ जी की आज्ञा से दिलीप ने रघु के विवाह की अनुमति दी और वैवाहिक अन्य कृत्य हो जाने पर जब भाँवरी पड़ने लगी उस समय जब आगे आगे वर और पीछे पीछे वधू घूमती हुई चार प्ररिक्रमा कर चुके तब वशिष्ठ ने भांवरीं पड़ना रोककर अपना (गुरु का) पूजन कराया। पूजनान्त में जब रघु ने प्रणाम किया तो वशिष्ठ ने मृत्यू विजयी अर्थात् इच्छामरण का आशीश दिया और अवशिष्ट भांवरी को फेर (उलट) दिया आगे आगे वधू और पीछे पीछे वर। रघु ने परिक्रमाकर एक दो तीन कहकर भांवरी पूरा किया, पाँच छः सात गिना ही नहीं गया। इस तरह वहाँ केवल अपने आशीर्वाद मात्र से विधिगत को छेंक दिया।

कहा जाता है कि तभी से रघुकुल में भाँवरी फेर (उलट) देने की कुल रीति बन गई कि चार बार वर आगे रहें पश्चात् तीन बार बधू आगे रहे। इसका संकेत मानस में इस तरह है कि श्री सीताराम जी के विवाह में भांवरी पड़ते समय प्रथम तो—

कुँवर कुँवरि कल भांवरि देहीं।

कहा और तत् पश्चात् कहा कि—

सीयराम सुन्दर प्रति छाहीं। जग मगाति मनि खम्भन माहीं॥

ऐसा क्यों हुआ तो इसका कारण आगे चलकर बताया कि—

प्रमुदित मुनिन भांवरी फेरी। नेग सहित सब रीति निवेरी॥

इसी तरह की अथवा इन उपर्युक्त घटनाओं से अन्य अनेक विलक्षण घनो घटनायें सङ्गठित हुई होंगी। श्री भरतजी

तो घनेरे भूप का हवाला देते हैं। वास्तव में भरतजी के इस संकेत का लक्ष्य यह है कि गुरुदेव महर्षि श्री वशिष्ट जी के उस अमोघ आशीर्वाद का प्रयोग इस समय मेरे लिये भी होना चाहिये। (मानसमणि २३।३)

शंका ३१

राम चरित मानस में हंसों का रहना कई स्थानों पर वर्णित है जैसे—

बोलहिं जलकुकुट कल हंसा। (पंपासर)
चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं। (भूमिविवर, स्वयंप्रभाका०)
कूजत कल हंसगन०। (नीलगिरि)
मोर हंस सारस पारावत। भवनन पर शोभा अति पावत॥
(अयोध्याजी)

आदि; तब फिर जो चित्रकूट में महाराणी सुनैना ने कहा कि—

सुनिय सुधा देखिय गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥

ऐसा क्यों कहा कि 'मानससकृत मराल।'

(रामचरन कोली, भींभक, कानपुर)

समाधान

जासु चरण रज सब चहत शिव अज बिष्णु सुरेश।
ताहि सुता करि गोद लिय धन्य रानि मिथिलेश॥

किसी भी शंका के उठाने के प्रसंग को देख लेना चाहिये कि प्रसंग क्या है कब का है कहाँका है कैसाहै अर्थात् किस स्थिति में कही गई किस बात पर शंकाका रूप दिया जा रहा है अच्छ‍ तरह प्रथम ही प्रकरण को देख बिचार कर लेने पर जो शंका

उठे उसका समाधान यत्न पूर्वक ढूंढ़ना शंका समाधान का सभीचीन मार्ग है। यहां जो 'मानस सकृत मराल' कहा गया है वह महारा़णी सुनैनाजी ने उस समय कहा था जबकि—

पुलक सिथिल तनु बारि बिलोचन। महिनख लिखन लगीं सबसोचन
सबसियरामप्रेम कीसीमूरति। जनु करुणा बहु वेष विसूरति॥

सबका हृदय शोक-करुणारस में आप्लावित था। यहतो बहुत स्पष्ट है कि शोक में बिचार नहीं रह जाता कि क्या कहना चाहिये और क्या कहा जा रहा है—

कहिवे कछू कछू कहि जैहैं रहौ आलि अरमानी। (कृष्ण गो०)
सोक विकल दोउ राज समाजा। रहा न ज्ञान न धीरज लाजा॥

सभी जानते हैं कि दूध का फेन तो किंचित्-स्वांसमात्र की वायु लगते ही फट-फुट जाताहै परन्तु शोक की व्याकुलता में यहाँ सुनैनाजी कह रही हैं कि बिधाता की बुद्धि ऐसो बाँकी-टेढ़ी-विपरीत है कि वह बज्र की टांकी छेनी से दूध का फेन फोड़ती है—

सीय मातु कह विधिबुधि बांकी। जो पय फेन फोर पवि टांकी॥

शोक में पड़े हुए ब्यक्ति के मुख से जितनी बातें निकलती हैं उनमें सभी ही यथार्थ नहीं हुआ करतीं अपितु कुछ तथ्य हीन एवं विपरीत बातें भी मुखसे निकल जातीं हैं और कुछ सारयुक्त होती हैं। यहां मिथिलैश्वरी के मुख से 'मानससकृत मराल' एवं 'पयफेन फोर पवि टांकी।' शब्द निकले हैं वे शोकोद्गारित होने से प्रामाणिक नहीं हैं।

कुछ लोग हंसों की एक जाति बिशेष को 'मराल' मान कर कहते हैं कि 'मराल' संज्ञक पक्षी विशेष एकमात्र मानसर

में ही रहते हैं अन्यत्र नहीं, अन्यत्र तो मरालेतर जाति के हंस रहते हैं। ऐसा समाधान सुनने में तो रोचक है परन्तु प्रामाणिकता शून्य होने से अनास्थेय्य है। कोशों ने तथा शब्दार्थ की अन्य परम्पराओं ने तो हंस और मराल शब्द से अभिहित पक्षी को एकही माना है, दो नाममात्र हैं अन्य कोई सूक्ष्मतम भी भेद नही है। श्रीराम चरित मानस में भी मानसेतर स्थान में रहने वाले हंसको मराल कहाहै, अथवा ऐसा कहा जा सकता है कि मानसभिन्न स्थान में भी मराल रहना बतलाया है

सुनहिं सकल मति विमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहिकाला॥
तब कछु काल मराल तनु धरि तँह कीन्ह निवास।

यह नीलगिरि का वर्णन है, नीलगिरि सुमेरु का शिखर है और मानस हिमालय में है जहां से सरयू निकली हैं। अतएव मराल संज्ञक हंसों की जाति विशेष की कल्पना तो कल्पना मात्र ही है, उपरोक्त संमधान ही समीचीन है।

शंका ३२

भरद्वाज आश्रम में जब भरतलाल की पहुनाई हुई थी तो उस पहुनाई के सुख को कहा गया कि—

जे सुख सुरपुर सपनेहु नाहीं।

जब कि समस्त सुख का प्रबन्ध अष्टसिद्धियों ने ही किया और वे अष्ट सिद्धियां सुर पुर की ही ठहरीं तो कौन सा सुख सुर पुर जैसा नहीं रहा ?

पं० उमादत्तोपाध्याय बी० ए० अग्निकुण्ड अयोध्या

समाधन

श्री सिय ! जो तरु होउँ कहूँ, तो कृपा करि चन्दन वृक्ष बनाइय॥

धन्य कोऊ निज दासहिं भेजि, सुपुन्य कुल्हाड़िन ते कटवाइय॥
धर्म किये बहु कालन पाहन पै, केहुते फिरि मोहिं घिसाइय।
लै निज पांव लेपाइ उदार, 'कुमार सुरद्रुम ते सरसाइय॥

(क) तीर्थराज प्रयाग में महर्षि भरद्वाज जी के आश्रम पर श्री भरत जी की पहुनाई में परम सुजान तपोधन प्रयाग के कुलपति महर्षि भरद्वाज जी ने जो—

"विधि विस्मय दायक विभव मुनिवर तप बल कीन्ह"

वे सब वस्तुयें सुर पुर इन्द्रलोक क्या सत्यलोक ब्रह्माण्ड सृष्टा चतुर्मुख विधाता के लोक में भी सर्वथा दुर्लभ ही थीं। वे वस्तुयें हैं—

सुरसुरभी सुरतुरु सब ही के। लखि अभिलाष सुरेश शचीके॥

और इन सुरसुरभियों एवं सुरतरुओं से—

सब कहँ सुलभ पदारथ चारी।

देव लोक की सुरसुरभी और सुरतरु तो केवल तीन फल अर्थ धर्म और काम की पूर्ति कर सकते हैं। चौथा फल मोक्ष तो कोई सुरसुरभी एवं सुरतरु ही क्या पाताल लोक से लेकर सत्य लोक तक का कोई भी देवता इन्द्र या ब्रह्मा तक कोई भी मोक्ष नहीं दे सकता है। जब महाराज मुचकुन्द ने देवलोक में अपने बल से अपनी विजय वैजन्ती फहराकर देवताओं को तत्कालीन दैत्यों असुरों से अभय कर दिया उस समय भुवर्लोक के सत्य लोक तक के सभी देवताओं ने समवेत स्वर से भूलोकाधिपति इक्ष्वाकु महाराज मुचकुन्द से कहा था (भाग० १०।४८।५२)

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः।
एक एव ईश्वरस्तस्य भगवान् विष्णुरव्ययः॥

परन्तु जो देवगण नहीं कर सकते वह भूलोक के श्रीराम पदानुरागी संत कर सकते हैं यही नहीं भगवान् से भी बढ़ जाते हैं ऐसा स्वयं श्री हरि ने ही स्वीकार किया है कि—

'मोसे अधिक संत कर लेखा।' 'राम तें अधिक रामकर दासा॥'

इसी से श्रीरामदास संत भरद्वाज जी की निर्मित वस्तुयें ऋद्धि सिद्धियों द्वारा प्रस्तुत की गई थी वे तो देवलोक से विलक्षण थीं परन्तु परमारथ पथभी सुरसुरभी एवं सुरतरु के द्वारा सबको चारो फल सुलभ हो गये जो कि सुरपुर में स्वप्न में भी नहीं है।

(ख) अन्वेषक मनीषियों ने बहुत अन्वेषण के पश्चात् निश्चित किया है कि निम्न सात पदार्थ स्वर्ग में किसी देवता या स्वर्गीय को प्राप्त नहीं हो सकते—

इक्षोर्विकारं मतयः कवीनां गवांरसं बालकभाषणं च।
ताम्बूलभक्ती ललनाकटाक्षं नैते पदार्था हि भवंति स्वर्गे॥

यद्यपि इनमें कुछ वस्तुयें कामधेनु चिंतामणि किंवा कल्प वृक्ष द्वारा प्राप्त हो सकती हैं परन्तु जो अपने औरस किंवा गर्भ जात बालक से शनैः २ बढ़ता हुआ आनन्द होता है क्या वह एक पेड़ से टपके हुए-गोद लिये बालक से हो सकता है। इस तरह अन्य पर भी कल्पना कर लेनी चाहिये। देवलोक में वही सैकड़ों युगों की पुरानी अरबों स्वर्गीयों की चिचोड़ी गई अप्सरायें-वेश्यायें ही प्राप्त होती हैं जो रंगे ओठ, पाउडर पोते, चुस्त वस्त्र पहने प्रौढ़ाओं से अधिक महत्व नहीं रखतीं। परन्तु महर्षि भरद्वाज जी ने जो—

सक चन्दन वनितादिक भोगा ।

उपस्थित किया था वह सद्योजात था । उसमें की वनितायें पौढ़ा नहीं अपितु वयः सन्धि प्राप्ता, मुग्धायें थीं जिनका अभी कौमार्य भंग नहीं हुआ है । जो कि अब सुर पुर में स्वप्न में भी नहीं प्राप्त हो सकतीं । जबसे जगज्जननी श्री भवानी जी का श्राप हो गया तबसे सुरपुर में किसो भी देवागंना के संतान होती ही नहीं तब कौमार्य सुरक्षित बालायें कैसे प्राप्त हो सकती हैं। इसीलिये—स्रक चन्दन वनितादिक भोगा ॥

कह कर आगे कहा कि—

जो सुख सुरपुर सपनेहु नाहीं ।

शंका ३३

स्रक चन्दन बनितादिक भोगा। देखि हर्ष विस्मय बश लोगा ॥

यह श्री भरद्वाजजी के आश्रम में श्री भरतलाल जी के स्वागत का वर्णन है। इसमें बनितादिक भोग क्यों ? महर्षि की प्रेरणा से ऋद्धि सिद्धियों ने लोगों के स्वागत के लिये बनितायें भी दूसरे भोगों के साथ क्यों उपस्थित की। परस्त्री की बात को सोचना भी ठीक नही, अयोध्याबासी वेश्यागामी तो हो नहीं सकते, तब इनका क्या तात्पर्य है क्या तब सामाजिक रीति कैसी थी ? (डा० राजेन्द्र प्रसाद सिनहा)

समाधान

अमरता धुरतैक रसास्पदं सदसिवाक्यपटुताप्रियताहिता ।
भवति यस्य प्रसादत ईश्वरं नमत वानरराजमिहादभुतम ॥

प्राचीनों ने मनुष्यों को विपथ बनाने वाले भोगों भोगोंके प्रकार बतलाये हैं ।

स्रग्गन्धो वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनम् ।
भूषणं वाहनं चेति भोगस्त्वष्टविधः स्मृतः ॥ :कामदर्पणः

इनमें से सात तो स्त्री पुरुष दोनों के लिये समानरूप से ही घातक हैं। एक वनिता केवल पुरुषों को विपथगामी बनानेवाली है, उसी तरह पुरुष भी स्त्रियों को सन्मार्ग से च्युत कराने वाला है, अतः जैसे साधक पुरुष को वनिता हेय है उसी तरह बनिता साधिका को पुरुष हेयतम है। अस्तु

:कः...प्राचीनकाल में कन्या अर्पण तो की जाती थी परन्तु उस समय क्या किसी भी समय आतिथ्य में स्त्री अर्पण करने की सामाजिक विधि नही थी और न कभी परस्त्री किंवा पण्य स्त्री (वेश्या) गमन समाज में जायज था।—

देखि हर्ष विस्मउ वश लोगा।

यह आधी चौपाई ही सारी शंकाओं का समाधान किये देती है कि चित्रकूट जाते समय श्रीभरतजी के साथ अवध वासियों के अतिरिक्त=

सेन संग चतुरंग न थोरी।

बहुत बड़ी चतुरंगिणी सेना भी थी जिसमें अवधके अतिरिक्त बाहर केही सैनिक अधिक रहे होंगे, सब सैनिक उसी नगर के ही नहीं हुआ करते, और सैनिकों के सस्त्रीक रहने की प्रथा एवं युद्ध काल में पत्नी साथ रहने का नियम नहीं है। अतः भरत जी की विशाल चतुरंगिणी सेना के बीरोंकी पत्नियां अपने अपने घर रहीं। महर्षि भरद्वाज जी के प्रभाव से जब सैनिकों ने अपनी अपनी स्त्रियों को यहां अपने अपने पास पाया तो वे हर्ष और विस्मय के बश होगये। हर्ष तो अपनी पत्नियों को देख

कर और विस्मय अर्थात् आश्चर्य तथा दुःख का कारण यह कि मुनि के प्रभाव से आश्चर्य और अपने अपने संयम में बाधा पड़ने को डरसे दुःख हुआ :कोशोंमें विस्मय शब्दका अर्थ आश्चर्य और दुख दिया गया है : संयम नियम में बाधा की डर से ही तो— देखि लोग सकुचात यमी से।

:ख:...पुरुषों में बहुविवाह का प्रचार सदैव से रहा है। इसलिये महर्षि भरद्वाज ने अपने तपः बल से ऐसी सुन्दरियां प्रगट करके अर्पित किया कि जो सर्वथा कुमारी कही जा सकती थीं, इसी तो कहा है कि—

जो सुख सपनेहुँ सुरपुर नाहीं।

क्योंकि अप्सरायें, अक्षतभगा नहीं हैं अपितु वे अनेकों स्वर्गियोंद्वारा अनेकोंबार की भुक्तभोग्या (भोगी हुई) हैं। परन्तु ये महर्षि प्रदत्त वनितायें सर्वथा अछूती कुमारीहैं। और स्त्रियों के लिये एक पतित्व का नियम होने से उनके लिये पुरुषादिक भोगा नहीं उपस्थित हुआ।

:ग:..."अन्तिम मुनि आयसु खेलवार" शब्द ही बतला रहा हैकि आतिथ्य धर्म पालनार्थ नहीं अपितु खेलवार (कौतू-हल किंवा परीक्षा) के लिये ही मुनि द्वारा यह—

स्त्रकचन्दन वनितादिक भोगा।

उपस्थित किया गया था कि कौन श्रीरामजी के प्रेम वश चित्रकूट जा रहा है और कौन लोगों की देखा देखो लाज संकोच वश। जो लोग संकोचवश जाते होंगे वे तो भोगों को ग्रहण कर लेंगे और जो राम प्रेम वश जाते होंगे वे कदापि स्वीकार न करेंगे। क्योंकि अनुरागरस के दो० १३६ में कहा है कि—

"नारायण" हरिभजन में ये पांचो न सुहात ।

विषय भोग निद्रा हंसी जगत प्रीति बहुबात ॥

परन्तु सभीलोग रामप्रेममें मस्तथे इसीसे भोगोंको देखकर डरने लगे कि इस— विधि विस्मय दायक विभव० ।

से हम लोगों संयम कैसे सुरक्षित रह सकेगा । तभीतो—

देखि लोग सकुचात यमी से ।

देख कर ही रह गये, किसी ने भोगा नहीं । सारांश यह कि किसी को घरमें रख आई हुई पत्नियां प्राप्त हुई और किसी को महर्षियोगबलार्जित, कुमारी सुन्दरियां गांधर्वरीत्पाउद्वाहार्थ (पत्न्यर्थ) प्राप्त हुई । अतः इस पूरे प्रसंग की प्रत्येक पंक्तियोंके अक्षर अक्षर पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता हैकि आतिथ्य (सत्कार) में स्त्रियों के देने की विधि नहीं थी वह भरद्वाज जी कृत विलक्षण स्वागत था और भरद्वाज प्रदत्ता स्त्रियोंके ग्रहण करलेने में परस्त्रीगमन जन्य पाप की भी आशंका नहीं थीं । परन्तु मुनि ने तो—

'कन्द मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ।'

कह कर "विधिविस्मय दायक विभव" दिया, इसलिये सत्पथ के पथिक अवधेश के अनुयायियों ने उन्हे ग्रहण नहीं किया अपितु उन्हें देखकर हर्ष विस्मय अर्थात् दुख औरआश्चर्य पाकर ही रह गये ।

मुनि प्रदत्तस्त्रियों को वेश्या कहना तो अपनी रंडीबाजी (स्त्रैणपन) का डंका पीटना है, जिस तरह एक दीनदार मुसलमान एक अंग्रेज अतिथि के लिये शूकर का मांस नहीं पकवा सकता और एक सदाचारी असली हिन्दू अपने पिता के ही

वीर्य से पैदा होने वाला: व्यक्ति किसी गो भक्षक अतिथि के लिये गाय का मांस नहीं राँध सकता। उसी तरह सच्चा हिन्दू न तो स्वयं मद्य मांस का सेवन कर सकता है न कभी किसी को किसी तरह दे सकता है। :बर्णशंकरों की बात निराली है: वेतो भिन्न सेतु होते ही हैं। (मा०म० ६।५)

शंका ३४

श्री भरतलाल जी को श्रीरामजीसे कौन सी विशेषता प्राप्त थी जो पूज्य गोसांई जी ने लिखा है कि—

किये जाहिं छाया जलद सुखद बहै वर बात।
तस मग भयउ न राम कहँ जस भा भरतहिं जात॥

(पं० रामगोपाल दास रामायणी)
(मा० म० ६।११)

समाधान

राम पदकमल त्यागि नहिं अनत जासु मन जात।
नमौ राम सुमिरत भरत मुनि सुर सिद्ध सिहात॥

जिस तरह श्री भरतलाल जी के लिये मेघ छाया करते रहे देवगण पुष्प बर्षाते रहे उसी तरह श्रीरामजी के लिए भी—

छाँह करहिं घन बिबुधगन बर्षहिं सुमन सिहांहिं।

परन्तु श्रीरामजी के लिये पृथ्वी कोमल नहीं हुई थी यद्यपि कि गहोरा वासिनी सुन्दरियाँ—

मृदु पद कमल कठिन मग जानी।

श्रीरामजी के पग को कोमल और मार्ग को कठोर जानकर चाहती थीं कि—

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥

अर्थात् जैसे हमारा हृदय सकुचाता है ऐसे ही इनके मृदुल चरण के स्पर्श से पृथ्वी भी सकुच कर मृदु हो जाती तो बहुत अच्छा होता। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। अपितु श्रीभरत-लाल जी तो आधे बैशाख के बाद गये थे तब शृङ्गबेरपुर से प्रयाग जाते समय मध्याह्न में चलने के कारण पावों में झलका पड़ गया था। परन्तु श्रीरामजी तो चैत में बन गये थे जबकि "मध्य दिवस में भी अति शीत न घामा" का सुहावना समय रहता है उस पावन काल में भी 'पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े। 'बैठि विलंबलों कण्टक काढ़े।' (कवितावली) श्रीरामजी के पाँव भूभुरि (तप्तधूरि) में डाह उठे—जल गये और जलने पर झलका पड़ता ही है। एवं कांटे भी बहुत गड़ गये तबतो काढ़ने में बिलम्ब लगा परन्तु श्रीभरतलालजी के कांटे तो कहीं गड़े ही नहीं और प्रयाग से आगे तो पृथ्वी भी कोमल हो गई।

देखि दशासुर बर्षहिं फूला। भइ मृदु महि मग मंगल मूला॥

यही कंटक न गड़ना और महि का मनही मन सकुच कर मृदु हो जाना मग का मंगल होना श्री भरतजी के लिए श्रीरामजी से मग की श्रेष्ठता है। महि श्रीरामजी के लिये नहीं हुई थी अतः—

देखि दशासुर बरिसहिं फूला। भइ मृदु महिं मंगल मूला॥

बताकर तुरन्त ही बिना किसी अन्य पंक्ति का व्यवधान किए ही कह रहे हैं कि—

किये जाहिं छाया जलद सुखद बहइ वर बात।
तसमग भयउ न राम कहँ जस भा भरतहिं जात॥

शंका ३५

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिलि आजू॥

इस चौपाई के अन्तिम पद में प्रगट करउँ रिसपाछिल आजू। कौन सी रिस को प्रगट करने के लिये लक्ष्मणजी ने कहा है। इस पद के अन्तर्गत कौन सी अन्तर कथा है?

(रामजी दास मिश्र 'दास')

समाधान

जब लछिमन भे बिकल अवधपुर तबहिं सँभारेहु।
जब किय रिस तट गंग सुमन्तहि तुरत सुधारेहु॥
चित्रकूट लखि कुपित बचन प्रिय कहि सुदुलारेहु।
नित लालित लखि लखन भरत प्रतिक्रोधहिं मारेहु॥
जग नृप गति बर्णित लखन मुख भरत भाइ मद रहित मन।
सो हमें सदा सब भांति सों होहु राम मंगल करन॥

श्री लक्ष्मणजी को रिस प्रथम बार तब हुई थी जबकि श्रीरामजी के बनवास की चर्चा सुना था। इसका विशद विवरण बाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग २१ में देखना चाहिए। और पिछली बार रिस हुई थी शृङ्गवेरपुर में सुमन्त की विदाई के समय। उसी रिस में—

'लखन कहेउ कछु अनुचित बानी।'
'लखन कहेउ कछु बचन कठोरा।'

आदि उसी पाछिल—शृङ्गबेरपुर वाली रिस को प्रगट करने को कहते हैं। इसपर जो अनेक प्रकार की कथाओं के रूप में विभिन्न कल्पनायें की जाती हैं वे सब प्रसंग विरुद्ध हैं और फिर कल्पना तो कल्पना ही उसका मूल्य ही कितना।

मानस के हिसाब मे प्रथम रिस जनकपुर में "लखन सकोप बचन जब बोले।" परन्तु उसके प्रगट करने का अवसर नहीं मिला और पछिली रिसि उपर्युक्त शृङ्गवेरपुर वाली ही है।

(मा० म० १०।७)

शंका ३६

निषाद राज गुह ने जब शृंगवेरपुर में गुरु वशिष्ठजी को प्रणाम किया तबतो मुनिने केवल आशीर्वाद मात्र दिया, और वही केवट निषादराज जब चित्रकूट में प्रणाम करता हैतो मुनि महाराज उसे हृदय से लगा लेते हैं, मुनि महाराज ने ऐसा विपरीत व्यवहार क्यों किया ?

(पं० लोकनाथ पाण्डे रामायणी कृष्णपुरा आरा)

समाधान

अनेकशास्त्र चिन्तनं त्वदीयभक्तिमण्डनं,
भवेदशेषतो यथा तथा कुरु कृपां मयि ।
निराश्रयो निरामयो त्वमाश्रयो ममाचिरं,
भवत्स्व तूर्ण राघब प्रसीदतां दयानिधे ॥

जबकि एक सामान्य मनुष्य भी अपने मिलने वालों का भाव समझ लेता है—

"आदमी पहचान लेते हैं कयाफा देखकर ।
खतका मजमूँ भाँप लेते हैं लिफाफा देखकर ॥"
"सूरत जरा जी देखी, फौरन समझ गये ।
कैसेहैं किस जमालके कैसे कमाल के ॥" (उर्दू सूक्ति संग्रह)

मनुष्य ही क्या पशु पक्षी तक मुख देखकरही भाँपलेतेहै—
हित अनहित पशु पक्षिउ जाना । मानुष तन गुण ज्ञान निधाना॥

तब महर्षि श्री बशिष्ठजी तो वेद मंत्र द्रष्टा ऋषि हैं, विवेक समुद्र अतएव सर्वज्ञ हैं—

गुरु विवेक सागर जग जाना। जिनहिं विश्वकर बदरसमाना ॥

तो उन परम वेदज्ञ महाऋषिराज से निषादाधिपति गुह का आन्तरिकभाव छिपा कैसे रह सकता था जोकि केवलऊपरी व्यवहार से भी झलक जाता है, वह इस तरह कि प्रथमबार अर्थात् शृंगवेरपुर में निषादराज परीक्षा लेने गये थे, इसकारण व्यवहारिक मर्यादापालनार्थ ही—

देखि दूर ते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीशहिं दण्ड प्रणामू ॥

निषादराज के दूरसे प्रणाम करने में धर्म की रक्षा तोहुई परन्तु भीतर से जो प्रेम का अभाव था इसीसे बाहर शरीर में पुलकावली नहीं हुई और इसी कारण रविकुल गुरु वशिष्ठजी ने भी राम प्रिय जानते हुये भी व्यवहारिक मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिये आशीर्वाद मात्र दिया—

जानि राम प्रिय दीन्ह अशीशा।

प्रेम की पुलकावली नहीं देखे इससे हृदयसे नहीं लगाये और चित्रकूट में तोकिसी प्रकारभी व्यवहारिकता किंवांपरीक्षा की बात ही नहीं थी वहां तो उसने आन्तरिक अनुराग से ही दण्डवत् प्रणाम किया था उसके रोम २ में प्रेम ही प्रेम भरा था जिस प्रेम के कारण उसके अंग कंटकित थे—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरिते दण्ड प्रणामू॥

शृंगवेरपुर और चित्रकूट के गुह के प्रणाम पुलक के अतिरिक्त अन्य कोई भी विभेद नहीं था, परन्तु वह प्रेमपुलक इतनी बड़ी विशेपता सम्पन्न था कि—

राम सखा ऋषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥

गुह का प्रेम पुलक और वेदमंत्र द्रष्टा ब्रह्मर्षि का बरबस छाती से लगाना इस अद्भुत दृश्य को देखकर मनुष्य तो क्या

नभसराहि सुर बर्षहिं फूला।

देवता तक सिहाते थे। निष्कर्ष यह कि—

शत्रु न काहू केर हरि मित्रहु नहीं लखात।
जैसे देखै मुकुर में तैसो ही दर्शात॥ (विश्रामसागर)
(मा० म० ११।६)

शंका ३७

सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पयफेन फोर पवि टांकी॥

रानी सुनयना ने ऐसी विधि बिडम्वना क्यों किया?

[रामसूरत शरण]

समाधान

श्री मिथिलेश लली पद पंकज पावन चाहत ध्यान धरै को।
जा पद को धरि ध्यान विचक्षण सन्त चहैं भवसिन्धु तरै को॥
रामकुमार कृपा करि हेरत जा दिशि ता दिशि और अरै को।
पाय सहायक मारुति को जग के नर की परवाह करै को॥

मानव स्वभाव की यह विचित्रता है कि जब कोई काम हमारी रुचि के प्रतिकूल हो जाता है तो उसका कारण दूसरों के शिर मढ़ने में अपनी दक्षता मानते हैं। यदि दोषारोपण के लिए कोई जागतिक प्राणी नहीं मिलता तो—

'काल कर्म विधि शिर धरि खोरी।' और 'कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ।' से संतोष कर लेते हैं। अपनी

रुचिके अनुकूल काम सिद्ध न हो जाने पर उसे विधिका कर्तव्य मानकर सारा दोष विधि बेचारे के शिर पर मढ़ देते हैं। जैसे— " तात बात मैं सकल सँवारी।" बात सँवारी–काम बनाया मैंने, परन्तु बिगाड़ा विधि ने–'कछुक काज विधिबीच बिगारयो।' इसी तथ्य को अनेक कवियों ने स्वतत्र रूप से विधि को बुद्धि-हीन विवेकहीन कहा है कि विधि ने यह ठीक नहीं किया। वह ठीक नहीं किया – ऐसा करता तो ठीक होता वैसा करता तो ठीक होता आदि। जैसे—

अजा गलस्थस्तन उष्ट्र पुच्छं
कक्षान्तरे केशमथाण्ड युग्मम् ।
त्वं संसृजन्सायणमायणादौ ।
ब्रह्माग्रगण्यो न नबभूव पूज्यः ॥

शशिनि खलु कलंकं कण्टकं पद्मनाले,
युवतिकुचनिपातः पक्वता केशजाले ।
जलधिजलमपेयं पण्डिते निर्धनत्वं,
गतवयसि विवेको निर्विवेको विधाता ॥"

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षु दण्डे
नाकारिपुष्पं खलु चन्दनस्य ।
विद्वान् धनी धार्मिक दीर्घजीवी
धातुः पुराकोऽपि न बुद्धि दोऽभूत ॥

इसी तरह भाषा के कवियों ने भी बहुत कहा है—

'कूर होते कूबरे कुचाली सब कारे कारे
भारी कच लम्पट ललाट भगभरते ।
चोरन सर सींग दगाबाजन के पूँछ होती

श्रीपति चुगुल बैन तोतरे उचरते।
भूँटेन की जीभ पर वड़े बड़े बार होते,
गड़ी गड़ी अँखियाँ निलज्जन की करते।
मेहरा होते मकुने मुछारे सब शूरवीर
जार होते नकटे निराले देखि परते ॥'

खार कियो रत्नाकर सागर काई सरोवर में उपजायो।
ऊसर भूमि में बाँदा रसाल पै चन्द्रमा हूँ को कलंक लगायो॥
ब्राह्मण भिक्षुक सूम सवित्त उदारन को दिकदार बनायो।
चतुरानन नाम परयो तो कहा वह आदिहि ते चुकतै चलि आयो॥
रूख कलपतरु ऊख अबीजरु धेनु पशू जिन जानि बनायो।
कोकिल कार भुजंगन के मणि माणिक शैलन में उपजायो॥
मोती समुद्र में सोती पहार पै पानी पताल ते आनि पियायो।
चतुरानन नाम परयो तो कहा वह आदिहि ते चुकतै चलिआयो॥
खीरहि खोवा, सही सो बही अरु तावा नहीं तिहि तावाकहायो।
अंकुश के बश कीन्ह करीन जे पंकज पानि में आनि जमायो॥
गाड़ी नहीं तिहि गाड़ी कहावत गाइ के बाल ते भैंसि लगायो।
चतुरानन नाम परयो तो कहा वह आदिहि ते चुकतै चलिआयो॥

कवियों में जो प्रथा चल पड़ती है वह कविसम्प्रदाय या कविसमय कही जाती है। उसका पालन प्रायः सभी कवि लोग महाकाव्यों में किया करते हैं। इस विधि को विडम्बित करने की रीति को गो० श्रीतुलसीदास जी ने भी अपनाई है परन्तु वे विधि को स्वतंत्र रूप से स्वयं नहीं कोसते अपितु पात्रों के माध्यम से वह काम किया है अर्थात् कथानक के पात्रों

विधि को दोष दिया है जैसे कैकेय देश वासियों ने—

'सोचहिं दूषण दैवहिं देहीं । विचरत हंस काग किय जेहीं ।।'

अयोध्या वासियों ने—

"एक विधातहिं दूषन देहीं । सुधा दिखाइ दीन्ह विष जेही ।।"

लिखत सुधाकर गा लिखि राहू, विधिगति वाम सदा सबकाहू।।

गहोरावासियों ने—

फिरत नारि नर अति पछिताहीं, दैवहिं दोष देहिं मन माहीं ।
सहित विषाद परस्पर कहहीं, विधि करतब सब उलटे अहहीं ।।
निपट निरंकुश निठुर निशंकू, जिहि शशि कीन्ह सरुज सकलंकू ।
रूख कलपतरु सागर खारा, तिहि पठए वन राजकुमारा ।।
जो पै इनहिं दीन्ह वनबासू, कीन्ह वादि विधि भोग विलासू।
ए विचारहि महि बिनु पद त्राना। रचे वादिविधि वाहन नाना।।
ए महि परहिं डासि कुश पाता, सुभग सेज कत सृजत विधाता।
तरुतर वास इनहिं विधि दीन्हा, धवलधामरचि कत श्रमकीन्हा।।

जौ ए मुनिपट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार ।
विविध भांति भूषण वसन, वादि किये करतार ।।'

जो ए कन्द मूल फल खाहीं । वादि सुधादि अशन जग माहीं ।।...

सबसे विलक्षण एक नई युक्ति चित्रकूटीय महिलामण्डल की गोष्ठी में मिथिलेश्वरी सुनयनाजी ने कही—

"सीय मातु कह विधि बुधिवांकी, जो पयफेनफोर पवि टांकी ।"

श्री सुनयनाजी ने कहा कि विधि की बुद्धि-सरस्वती अत्यन्त ही बांकी-वक्र कुटिल क्रूर भौमयोः (हैमः) हेम कोषानुसार वक्र अर्थात् टेढ़ी कुटिल एवं क्रूर है (संस्कृत वक्रका हिन्दी बांकी है।) इसलिए कि उसने बज्र की छेनी से दूध के फेन को फोड़ा है । इससे फेन फोड़ने वाली ब्रह्माकीक्रूर एवं कुटिल बुद्धि

तो सरस्वती है । यह तो प्रायः स्पष्ट ही है पर दूध फेन, पात्र, छेनी (टांकी) हथौड़ी (घन) और घन का बेंट (लकड़ीकी मूठ) क्या है ? दूध का फेन यद्यपि दूध से अलग कोई वस्तु नहीं है । दूध को कुछ हिंडोलने झोलने से दूध ही का कुछ अंश गाज-फेन बनकर ऊपर आकर दूध को आच्छादित कर लेता है उस फेन को हटाने मिटाने किंवा फोड़ने की जरा सी वायु ही पर्याप्त है। वह वायु जोर से हाथ हिला देने अथवा फूंक देने मात्र से जाकर फेन को फोड़ देती है । फेन फोड़ने के लिए छेनी को हथौड़ी से मारने पर फेन तो फटता नही प्रत्युत पात्र फूट जाता है, दूध विखर (चारो तरफ बह) जाता है।" फेन भी दूध में मिल जाता है यदि वह बहता हुआ दूध दूसरे पात्र में समेटा जाय--प्रस्तुत चौपाई के रूपक में--अवध का साम्राज्य दूध है, पात्र राजा दशरथजी हैं, दूध का फेन--युवराजपद है, मुख या हाथ हो हलकी हवा– पहला वरदान है– 'देहु एक वर भरतहिं टीका' फेन हटने से पात्र को कोई क्षति नहीं पहुंचती तभी तो पुरवासियों ने मंझली रानी से कहा– 'भरतहिं अवशि देहु जुवराजू' दूसरा वरदान बज्र की टांकी है जिसे सुनते ही—

"विवरन भयउ निपट नरपालू, दामिनि हनेउ मनहु तरुतालू॥"
विपुल विहँग बन परयो निशि मनहु कुलिश कठोर ॥"
तुम जिहि लागि बज्र पुर पारा ।"

पात्राधार या निहाई--राजसिंहासन किंवा अयोध्याहैलोहे का हथौड़ा महारानी कैकेयी और उसमें की लकड़ी की मूठ (बैंत दस्ता) मंथरा है ।

बांकी शब्द संस्कृत बक्र शब्द का तद्भाव रूप हैं । वक्र

का अर्थ टेढ़ा, कुटिल क्रूर है- वक्र :कुटिलः क्रूरभौमयोःपत्थर काटनेवाली लोहेकी छेनीको संस्कृतमें टङ्क कहतेहैं- (हेमचन्द्रकोश)

॥ टङ्क पाषाण दारणः (अमर कोश)

टङ्को नील कपित्थेच- (कोशासिग्रावदारणे॥ (मेदिनीकोश

पात्र फूटते-राजा दशरथ के मरते ही दूधरूपी राज बहने बिखरने लगा। फेन रूपी युवराज पद तो नष्ट हो ही गया ।सुनैना जी कहती हैं कि युवराज तो कोई हो ही नहीं सकता अबतो वन से लौटने पर श्रीरामजी नये सिर से सीधे राजा ही होंगे—

राम जाइ वन करि सुर काजू । अचल अवधर करिहैं राजू !
अमर नाग नर राम बहु बल ।सुख वसिहैं अपने अपने थल॥"

शंका ३८

श्री रामजी नित्य प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही—

प्रात काल उठके रघुनाथा.। मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥

जब ऐसा नित्य का नियम था तो बनबास के दिन सूर्योदय के बादतक भी माता पिताको प्रणाम करने क्यों नहीं गये? जो मझिली महारागीको कहना पड़ा कि—

आनहु रामहि बेगि बुलाई । समाचार तब पूछहु आई ॥

(पं० रामगोपाल शास्त्री आगरा)

समाधन

रसात्मिका रामरहस्यमालिनी, रसालिनी प्रोद्धतकेलिशालिनी ।
सुधारिणी संसृतिसिन्धुतारिणी, पुनातु मां तारिणि विश्वतारिणी॥

उपनयन होने के पूर्व श्री रामादि माता के महल में ही रहते थे अतः उठते ही प्रणाम करते थे। अब सपत्नी होने पर तो अलग महल में रहने लगे- और वह अलग महल इतनी दूर

था कि श्री रामजी को अपने महल से रथ पर बैठ कर पिता के महल में जाना पड़ता था—

ततः पावकसंकाशमारुरोह रथोत्तमम् ॥२८॥
प्रययौ तूर्णमास्थाय राघवो ज्वलितः श्रिया ॥३१॥वा० रा०२।१६

सपत्नीक होते से कर्मकाण्ड का दायित्व बढ़ गया था अतः प्रातः उठकर नित्यक्रिया स्नान दान आदि से निवृत्त होने के बाद ही प्रणाम करने जाते हैं—

"नित्य निबाहि गुरुहिं शिर नाये ।"
"प्रात क्रिया करि तात पहिं आये चारिउ भाई –"

कल बशिष्टजी ने संयम करने की आज्ञा दिया था कि—

राम करहु सब संयम आजू

यौबराज्य कालिक संयम के बन्धन में बँधे होने के कारण बिना बुलाये नहीं जा सकते थे। यह भी एक कारण हो सकता है

शंका

समाचार जब लछिमन पाये। व्याकुल बदन बिलखि उठिधाये॥

श्रीरामजी कोपभवन से निकलकर अपनी माता के पास गये उनके संबाद में काफी समय लगा, और तत्पश्चात् श्री-सीताजी से लम्बा बाद बिबाद हुआ इन सबमें कुछ घंटे तो लगे ही होंगे तब तक लक्ष्मणजी कहां थे ? जबकि श्री रामजी के कोपभवन में पहुँचते ही—

नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

लक्ष्मणजी को यह खबर देर से क्यों लगी ?

(पं० देवशरण त्रिपाठी 'कंज' रामायणी प्रयाग)

समाधान ४०

सल्लक्षणैर्लक्षितलक्ष्मणप्रियां विभासयन्तीं भुवनैकभूणाम् ।
मणीन्द्रमुक्तामणिमन्दिरेस्थितां भजाम्यहं भूतिकरीं सदुर्मिलाम् ॥

आज श्रीरामजी का यौवराज्याभिषेक होने वाला था और वह कार्य तब तक सम्पन्न नहीं माना जा सकता जब तक कि राजकीय चतुरंगिणी सैन्य व्यूह विशेष–क़वायद के रूप में खड़ी होकर अपनी–सेवा सलामी बजाकर नज़र भेंट न अर्पण-कर देवे। राजकीय सुरक्षित सैन्य सदैव नगर के बाहर ही रहा करती है, नगर में तो उतनी ही सैन्य रहती है जितनी नित्य के लिये नागरिक सुरक्षा पर नियत रखी जाती है। अयोध्या की समस्त अतिरिक्त सैन्य सरयू के उत्तर पार रहती थी, जिसे आज भी छावनी ही कहते हैं सलामी के लिये सैन्य को विशेष ढंग से तैयार करने के लिये सूर्योदय से पहले ही श्री लक्ष्मण जी सरयू पार चले गये थे । जाते समय सरयूपार करके स्नान सन्ध्यादि दैनिक कृत्य से निवृत्त होकर तब छावनी पहुँचे होंगे और सैनिकों को तैयार कर रहे होंगे। यहां सूर्योदय के बहुत बाद तो श्रीरामजी कोप भवन में ही गये उसके कुछ समय बाद ही नगर में बात फैली तत्पश्चात् सरयू के उस पार सैन्य शिविर में समाचार जब पहुँचा तब वहां से लक्ष्मण जी बिल
व्याकुल वदन, अश्वदौड़ते हुये जब तक राज भवन आये श्री सीताराम जी बड़ी अम्बा के भवन से निकलते हुये राज महल के बाहर द्वार पर ही मिल गये।

शंका ४१

कहब संदेश भरत के आये। नीतिन तजबराज पद आये॥
जब श्रीरामजी का विश्वास है कि—

भरतहिं सोइ न राज मद विधि हरिहर पद पाय।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीर सिन्धु बिनशाय॥

तब ऐसा संदेश क्यों भेजा कि राज पद पाकर नीति न छोड़ना?

(पं० श्री बालकृष्ण अग्नि होत्री, नादौरा छतर पुर)

समाधान

सीतापादाब्जभृंगं माण्डवी हृद्विहारिणम्।
लोकोत्तरं रामदासं भरतं तं नमाम्यहम्॥

शृङ्गवेरपुरसे जब सुमन्तजी श्रीरामजी को पहुँचाकर अयोध्यामें आये तो राजा दशरथजीसे बतलाया कि गङ्गाजी के इसी पारसे मुझे लौटातेहुए श्रीरामजीने अपने सब प्रियजनों को अलग२ सन्देश कहते समय श्रीभरतलालजीके लिये कहा है कि—

कहब संदेश भरत के आये। नीतिन तजब राजपद पाये॥

इसपर कुछलोग पूर्वापरके समन्वयपर विचार किये बिनाही अर्थ करदेते हैं कि श्रीरामजीने श्रीभरतके लिये कहा है कि 'भरत! राज्य पदपाकर नीति मत छोड़देना।' इसीअर्थसे तो आपकी शंकाहै कि श्रीरामजीको भी भरतजीके नीति त्यागदेने का निश्चयसा था तभी तो ऐसाकहा। परन्तु ऐसाअर्थ करना ठीक नहीं, क्योंकि—

'भरतहिं होइ न राजमद विधि हरिहर पदपाय।'

सुनहु लखन भल भरत सरीखा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीखा॥

ऐसा श्रीरामजीका दृढ़निश्चय है। अतः उस चौपाईका ऐसा अर्थहै कि "संतुष्टातु नृपाधमाः।" (चाणक्य नीति) अतएव उस सन्देश का यह भाव है कि "एकराजा किंवा राज पुत्रको राजपद पाकर त्याग देना नीतिनहीं है, लोकवेद के मर्यादा की रक्षा करते हुये जो राज्यमिले उसे करना चाहिये यही नीति है।" ऐसा सन्देश कहनेका कारण यहहै कि श्रीराम जीको भरतजीका स्वभाव पूर्णरूपेण मालूमहै। जानतेहैं कि भरत जी राज्य लेना नहीं चाहते, इससे दबाव डालते हैं कि-

नीतिन तजव राज पद पाये।

जानते हैं कि मेरे वनवासका कारण होनेसे मझली माता कैकेयीजीके प्रति भरतलालकी पूर्ववत् मातावाली निष्ठानरह जायेगी अतः जोर देकर कहा कि—

सेयेहु मातु सकल सम जानी।

तिस पर भी तो गीतावली में वर्णित है कि—

कैकेयी जबलौं जियति रही।

तबलौं भरत मातु सो मुहँ भरि बचन न भूलि कही॥

और यहभी जानते हैं कि मेरेवियोग दुखः में भरतलाल को अपनेही शरीर का सारसँभार रखना भारी होजावेगा इसी से यह भी सन्देश कहलाया कि—

पालेहु प्रजहिं कर्म मन बानी।

जब अपना होशहवास दुरुस्त रखेंगे तभी तो मनक्रम-बानी से प्रजाओंका पालन कर सकेंगे। प्रजा पालन में ही तो

सम्पूर्ण नीति निहित है—

राज धर्म सर्बस इतनोई। जिमि मन माँझ मनोरथ गोई॥

अतः एक साथही "राजपद पाकर नीति न छोड़ना। और मन क्रमबानी से प्रजाका पालन करना कहना चर्वितचर्वण वत् ही हो जाता है। वाल्मीकि रामायण ४२।५२।३६ में तो इसे अत्यन्त स्पष्ट रूप से व्यक्त किया ही है—

तातस्य प्रियकामेन यौवराज्यमबेक्षता।
लोकयोरुभयोः शक्यं नित्यदा सुखमेधितुम्॥

संस्कृतकी सुप्रसिद्ध टीका शिरोमणि में "अवेक्षिता" का अर्थ स्वीकुर्वता और "एधितुम्" का अर्थ "विर्द्धयितुम्" किया है। पूरे श्लोक का अर्थ है कि "यदि तुम पिताजी को प्रसन्न करने के लिये युवराजपद लेना स्वीकार कर लोगे तो दोनों लोक में तुम्हारे लिये सदा सुख की बृद्धि होगी।

वक्तव्यश्च महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः।
पितरं यौवराजस्थो राज्यस्थमनुपालयः॥ २।५८।२२।

महाबाहु इक्ष्वाकु कुलनन्दन भरतलालसे कहना कि युवराजपद पर आसीनहोकर ही महाराज पिताजीकी आज्ञा का पालन करो॥

भरत जी को जितने सन्निकट से रामजी जानते हैं उतना और कोई नहीं—

तात तुमहिं मैं जानौं नीके।

इसी से भरतजी पर दबाव डाल रहे हैं कि राज्य अवश्य करना। यही भरतजी भी कह रहे हैं कि—

'शोक सनेह कि बाल सुभाये। आयउँ लाय रजयसु पाये॥'
'प्रभु पितु बचन मोह वश पेली। आयउँ इहाँ समाज सकेली॥'

श्रीभरतजी अपना दो अपराध मान रहे हैं। एकतो प्रभु (श्रीरामजीकी और पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना अर्थात् राज्य न करना क्योंकि--

लोक वेद सम्मत सबहीका। जिहि पितु देइसो पावइ टीका॥

और---राय राजपद तुम कहँ दीन्हा॥

इस मिलेहुये राज्य का भरतजीने परित्याग करदिया।

पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहिं।

और दूसरा अपराध यह मानतेहैं कि— समाज बटोरकर [एकान्तवास में वाधा देने के लिये] यहां चित्रकूटमें आना। इसी से भरतजी का कहना था कि—

मोरे नीत न धर्म विचारू।

सेवकका परमधर्महै स्वामीकी आज्ञाका पालन करके स्वामी को प्रसन्न रखना:—

'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।' 'चहै स्वामिहित सेवक सोई॥'

वशिष्ठजीने कहाथाकि भरत ! तुम राज्यकरने लगोगे तो–

सुनि सुख लहब राम वैदेही।

माता श्रीकौशल्याजीने भी इसीका समर्थन किया कि—

पूतपथ्य गुरु आयसु अहई।

महर्षि भरद्वाजजी ने भी यही कहा था कि—

करतेहु राज तुमहिं न दोषू। रामहिं होत सुनत संतोषू॥

अत: श्रीभरतजीने जो अपने आपमें नीति और धर्म-विचारका अभाव बतलाया उसका कारण यहहै कि प्राप्तराज्य

का त्यागना–राज न करना–केवल यहीमात्र अनीतिहै, अन्य-प्रकार की कोईभी अनीति श्रीभरतजीमें नहींहै और प्रभु और पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घनकरना अर्थात् राज्य न करना ही धर्म विचार का अभावहै अन्य नहीं। वैसे श्रीभरतजीके धर्म और नीतिपरही विश्वटिकाहै, यह श्रीरामजीका मत है जैसाकि चित्र-कूट में कहा था–

भरत भूमि रह राउरि राखी। सत्य कहौं करि शंकर साखी॥

श्री गुरुदेव वशिष्ठजी ने भी कहा था कि–

समुझब कहब करब तुम जोई। धर्मसार जग होइहि सोई॥

अतः "नीतिन तजब राज पद पाये।" का राजपदपाकर नीति न छोड़ना' अर्थकरना सरासर नीतिका गलाघोंटना है। राजा या राजकुमारकेलिये 'राजपद पाकर उसराज्य को त्याग देना नीति नहीं है।' यही अर्थ समीचीन, युक्ति, प्रकरण एवं शास्त्र सम्मत है।

शंका ४२

तापस वेष बिशेष उदासी।

का बरदान था तब रामजी ने धनुष बाण आदि क्यों लिये ?

(निर्मल प्रसाद द्विवेदी जैमेरा, मूरा, रायगढ़ म० प्र०)

समाधान

धनुष-बाण नित कर धरत जन रक्षण हित नाथ।
निसि दिन रामकुमार पद दास नवावत माथ॥

(क) राम तुरत मुनि वेष बनाई। चले जनक जननिहिं शिरनाई॥

जिस समय श्रीरामजी बन जाने लगे तो बरदान माँगने

वाली मझिली अम्बा श्री कैकेयी जी के सामने ही धनुष-बाण तरकस तलवार आदि शस्त्रास्त्र लेकर अपनी अँगूठी पहिने हुए पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण को साथ लेकर चले थे। यदि विशेष उदासी बरदान में धनुष बाण आदि उक्त वस्तुएँ विघातक होतीं तो महाराणी कैकेयी जी तुरन्त ही प्रतिवाद करतीं, उनके प्रतिवाद न करने से सिद्ध हुआ कि धनुर्बाणादि विशेष उदासित्व के किञ्चित् भी प्रतिकूल नहीं है और बरदान माँगने वाली माता ने भी क्यों का प्रश्न नहीं उठाया था, परन्तु ऊटपटांग शंका करने वाले भले लोगों को क्या कहा जाय जो "बरबस मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त" के उदाहरण बना करते हैं।

(ख) 'परम स्वतंत्र न शिर पर कोई। परम स्वतंत्र राम भगवाना राम कीन्ह चाहैं सो होई। करइ अन्यथा अस नहिं कोई ॥

सच्चे अर्थों में सर्वतंत्र स्वतंत्र होने से श्रीराम जी को जिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता बन में थी वह वह सब वस्तुएँ साथ ले गये थे। विशेष उदासी का तात्पर्य केवल गृहस्थों की छोटी बड़ी किसी भी बस्ती में न जाना एवं बन में ही रहनामात्र था। यह श्रीरामजी के कथनों से ही स्पष्ट है—

(१) वर्ष चार दस वास बन, मुनि ब्रत वेष अहार।
ग्राम बास नहि उचित··· ··· ···

(२) कह प्रभु सुन सुग्रीव हरीशा। पुर न जाउँ दस चारि बरीशा।

(३) पिता बचन मैं नगर न जाऊँ।

यही बात वक्ताओं ने भी कहा है कि—

पिता बचन तज राज उदासी। दण्डक बन बिचरत अविनाशी॥

राज्यत्यागकर बनमें बिचरना उदासीपना है।
और बस्ती में न जाना विशेष उदासीपना है।

शंका ४३

श्रीरामजी ने बन जाते समय एक रात शृङ्गवेरपुर में निवास किया था। और शृङ्गवेरपुर में ही श्रीरामजी की बहिन शान्ताजी रहती थीं। तब रामचरित मानस में शान्ताजी का दर्शन श्रीरामजी ने किया था। क्यों नहीं लिखा गया? जबकि शृङ्गवेरपुर के ग्रामीण नरनारी सभी रामजी का दर्शन करने गये थे, "कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी"

(मौनी रघुनाथदास मानस कोविद शृङ्गवेरपुर)

समाधान

वानरत्वं सहायेन ब्रह्मणो ऽप्यतत्राक् सुकृत् ।
रक्षितं श्रौतमर्यादं तस्मै परब्रह्मणे नमः ॥

श्रीरामचरितमानस हीं नहीं अपितु किसी भी प्रामाणिक-ग्रन्थ में बनजाते समय श्रीरामजी का शान्ताजीका दर्शनकरना नहींलिखाहै। गोस्वामीजोके बाद की रचना सत्योपाख्यान में शृङ्गवेरपुर में शान्ताजी की चर्चा है। हाँ बहिन होने का जो प्रवाद फैलाहै उसका समाधान पढ़िये।

श्रीरामचरितके सबसे प्रमाणिक ग्रन्थ बाल्मीकीयरामायण बालकाण्ड सर्ग ११ में लिखा है कि—

१— अंगराजेन सख्यं च तस्य राज्ञो भविष्यति ।
कन्या चास्य महाभागा शान्ता नाम भविष्यति ॥११।३

श्रीगोविन्दराज ने भूषणटीका में और महामहोपाध्याय

श्रीनागोजिभट्टने रामाभिरामीय तिलक में "अस्य रोम पादस्थ" अर्थ किया है।

२—शान्ता तव सुताराजन् सहभर्त्रा विशांपते॥ ११।१६

अवधेश दशरथ ने रोमपाद से कहा "हे विशाम्पते राजन् "तव सुताशान्ता" वाल्मीकियरामायण १।११।५ में

दशरथने स्वयं को "अनपत्योस्मि" कहा था अपुत्रक नहीं। क्योंकि अपत्य तो पुत्रकन्या दोनों हैं। अवधेश दसरथ जी के कोई कन्या कभी रही होती तो "अनपत्योस्मि" कभी न कहते।

३—पुरुवंशीय राजा अंगने अंगदेश [भागलपुर] बसाया और-

तत्राङ्गस्य तु दायादो राजासीद् दधिवाहनः।
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः ॥९५॥
आसीद् दिविरथापत्यः विद्वान् धर्मरथो नृपः।
स हि धर्मरथः श्रीमांस्तेन विष्णुपदे गिरौ ॥९६॥
सोमः शुक्रेण वै राज्ञा सह पीतो महात्मना।
अथ धर्मरथस्याभूत् पुत्रश्चित्ररथः किल ॥९७॥
तस्य सत्यरथः पुत्रस्तस्माद् दशरथः किल।
लोमपाद इति ख्यातस्तस्य शान्ता सुताभवत् ॥९८॥
अथ दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः ॥९९॥

[मत्स्य महापुराण अध्याय ४८]

४—यही बात वायुपुराण अनुषंगपाद अध्याय ९९ के श्लोक १०३ से १०६ तक में कही गई है। वहाँ—

"लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्तासुताभवत् ॥१०७॥

५ – हरिवंशके प्रथमपर्व हरिवंशपर्वके अध्याय ३१ श्लोक ४३ से ४५ तक में वही परम्परा बताकर कहा है कि–

"अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत् ।
लोमपाद इति ख्यातो, यस्य शान्तासुताऽभवत् ॥४६॥

६—ब्रह्मपुराण अध्याय १३ में श्लोक ३७ से ४६ तक में वही परम्परा कही गई है ।

लोमपाद इति ख्यातो शान्ता यस्य सुताऽभवत् ॥४०॥

हरिबंश,मत्स्य, वायु,और ब्रह्म पुराण सब में एकाध शब्द के फेर फार से वही श्लोक एवं वही परम्परा है । इसी से मैने चारों जगहों के सभी श्लोक बार बार यहां नहीं लिखा है । परम्परा यह है कि अंग के वंशज दधिबाहन, के पुत्र दिविरथ, दिविरथ के पुत्र धर्मरथ, धर्मरथ के पुत्र चित्ररथ-चित्ररथ के पुत्र दशरथ जिनका दूसरा बिख्यात नाम लोम पाद और लोमपाद के शान्ता कन्या और चतुरंग पुत्र हुआ महा भारत में प्रसंग पड़ने पर बार बार यही कहा गया है कि शान्ता लोमपादकी औरसी कन्या थीं ।

७—निवर्तितेषु सस्येषु यस्मै शान्तां ददौ नृप :
लोमपादो दुहितरं सावित्रीं सविता यथा ॥

(महाभारत बन पर्व ११० । २६ ।

८—स लोमपादः परिपूर्णकामः सुतौं ददावृष्यशृंगायशान्ताम् ॥

(महाभारत बन ११३ । ११ ॥)

९—लोमपादश्च: राजर्षिः शान्तां दत्वा सुतां प्रभुः ।
ऋस्यश्रृंगाय विपुलैः सर्व कामैरयुज्यत ॥

(महाभारत शान्ति पर्व २३४ ।३४।।

१०—विक्रमकी सातवीं शताब्दी में लिखा गया तमिल भाषा का महा काव्य महाकवि कम्बर रचित कम्बरामायण के बालकाण्ड के अध्याय ५ के ५४वें पद्य में लिखा है कि शान्ता राजा लोम पाद की औरसी कन्या थीं।

११—विक्रमकी १५वीं शताब्दी में बूदपुर (तेलगु) के बिट्ठल राजके पुत्र राजा गोनर्दने संवत् १४३७ वि० १३८० ईसवी में रंगनाथ रामायण की रचना किया है। रंगनाथ रामायण के बालकाण्ड के ८वें अध्याय में है कि शान्ता लोमपाद की औरसी कन्या थीं। कम्ब रामायण और रंगनाथ रामायण दोनों विहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना से हिन्दी में छपी हैं।

१२- भोजराज कृत चम्पू रामायण की साहित्य मंजूषा व्याख्या में है कि :—

शान्तानाम्नाङ्गदेशाधीश्वरस्यपुत्री रोमपाद नाम्नस्तनया।।

इन प्रमाणों के विरुद्ध भी यद्यपि एकाध श्लोक मिलते हैं परन्तु वे इन प्रमाणों के सामने नगण्य हैं। विरुद्ध एवं भ्रम तथा प्रवाद का कारण रोमपाद का पहला नाम दशरथ होना ही है। पाण्डुके मध्यमपुत्र का नाम पहिले कृष्ण था। परन्तु उसी काल में मथुरा विजय के बाद जब वसुदेव के पुत्र कृष्ण विशेष तेजस्वी ख्यात हुए तब पाण्डुपुत्र कृष्णका नाम अर्जुन प्रसिद्ध किया गया। वैसे पौरव चत्ररथ के पुत्र का नाम पहिले दशरथ था। परन्तु जब उसी काल में अवधेश अजनन्दन

दशरथ जी शनिश्चर विजय करके विशेष तेजस्वी ख्यात हुए तब अंग नरेश पौरव दशरथ का नाम लोमपाद प्रसिद्ध किया गया। पौरव और राघव दोनों दशरथ परस्पर घनिष्ट मित्र थे। वैसे ही यादव एवं पाण्डव दोनों कृष्ण घनिष्ट मित्र हुए।

अवधेश दशरथ जी के मित्र अंङ्गाधिप रोमपाद की कन्या होने से शान्ता जी को राम जी की बहिन कह दिया जाता है। जैसे रावण के नाना माल्यवान् के मित्र सुन्द यक्ष के पुत्र मारीच को रावण का मामा कह दिया जाता है।

शंका ४४

पितु आयसु भूषण बसन तात तजे रघुवीर ॥

जब रघुवीरने अयोध्या में ही "भूषणबसन" त्यागदियाथा तब गंगापार होनेपर निषादराज गुहके नौकर नावखेने वाले केवट को देनेकेलिये श्रीसीताजीने जो अपनी मणिमुद्रिका अपने हाथसे उतारीं थी उसे रामजीने क्यों पहन लिया जिसे लंका भेजते समय हनूमानजीको दिया था ?,

(महान्त श्रीदेवदासजी डाकोर)

समाधान

श्रीरामचन्द्रमुखचन्द्रचकोरकान्तां कान्तां
प्रभूतप्रणतार्तिहरां मनोज्ञाम् ।
राजेश्वरीं विबुधवृन्दगणाभिवन्द्यां-
नित्यं नतोऽस्म्यखिलसौख्यप्रदाँसुसीताम् ॥

श्रीगोस्वामीजी एवं अन्यअनेक प्रामाणिक श्रीरामचरित्र-वेत्ताओंनेलिखाहै कि श्रीरामजीने अपनीही मुद्रिका श्रीहनूमान-जी द्वारा लंका भेजीथी। कुछ प्रमाण देखिये:—अध्यात्मरामा०

१—अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यंगुलीयकमुत्तमम् ।
मन्नामक्षरसंयुक्तां सीतायै दीयतां रहः ॥ ४।६।२८

यहाँ स्पष्टरूप से 'एतत् मे अंगुलीयकम् ।' ऐसा श्रीरामजी ने श्रीहनुमान्‌जीसे कहा है। लंका में श्रीमारुतिने श्रीजानकीजी से बताया कि श्रीरामजीने मुझसे कहाथा कि—

२—अंगुलीयकमेतन्मे परिज्ञानार्थमुत्तमम् ।
सीतायै दीयतां साधु मन्नामक्षरमुद्रितम् ॥ अ०५।३।४

यहां भी उसी "एतत् मे अंगुलीयकम्० ।" की पुनरावृत्ति की गईहै कि यह श्रीरामजीका वाक्य कहा गया है।

३—अपश्यन्मुद्रिकां रम्यां रामनामांकितां शुभाम् ।
तदातिचकिता सीता ज्ञात्वा तां राममुद्रिकाम् ॥
आकुला हर्षशोकाभ्यां पृच्छति स्म पुनः पुनः ।
(यह डेढ़ श्लोक वशिष्ठरामायण का बताया जाता है)

यहाँ भी स्पष्ट रूप से है कि 'ज्ञात्वा तां राममुद्रिकाम्।' उसे श्रीरामजी की मुद्रिका जानकर श्रीसीताजीअत्यन्त चकित होकर बार-बार पूँछने लगीं। आनन्द रामायण में वर्णित है कि जब श्रीहनुमान्‌जी सीताजीकी खोजमें जाने लगे तब—

४—ततो रामः मुद्रिकां स्वां ददौ मारुति सत्करे ॥ १।८।६

श्रीरामजीने अपनी मुद्रिका दी "स्वां मुद्रिकां ददौ ।" अशोकवाटिकामें जब महारानी श्रीसीताजी को श्रीहनुमानजीने मुद्रिका दी तो—

५—सा राममुद्रिकां दृष्ट्वा नत्वा तामब्रवीत् कपिम् ॥
आ० रा० १।६।११४

यहाँ भी "तां राममुद्रिकां दृष्ट्वा नत्वा० ।" स्पष्ट है कि श्रीसीताजीने उस श्रीरामजीकी मुद्रिका को देखकर उसे प्रणाम किया और बोलीं। पुनः श्रीहनुमानजी के लंका लौटते समय--

६- तत्करे सीता ददौ तां श्रीराममुद्रिकाम् । आ० १।६।२७६

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण किष्किंधाकाण्ड सर्ग ४४ श्लोक १२ में है कि--

७- ददौ तस्यै ततः प्रीतः स्वनामांकोपशोभितम् ।
अंगुलीयकमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः ॥

इसपर टीका करतेहुये भूषणकार श्रीगोविन्दराजजी लिखतेहैंकि-

ननु त्यक्त सकल साधनस्य वनवृत्या वर्तमानस्य कुतोऽगुलीयकमिति चेत् इदमेतत् कार्यार्थं रक्षितवात् अत एव स्वांगुलीकं उन्मुच्यनोक्तम् ॥

पुनः वाल्मीकीय रामायणसुन्दरकाण्ड सर्ग३६ श्लोक४ में कहाहैकि-

८-- गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुःकरविभूषणम् ।

इसका टीका करते हुए भूषण कार श्रीगोविन्दराकजी लिखतेहैं कि-

भर्तुः करविभूषणं···मौने कृते ।
रा गोऽङ्गुलीयकं भूमौ च्यावतिस्म ।

९ - तस्यां विश्वासमानीय दत्त्वा रामगुलीय ॥

नृसिंह पु० ५१ । ३४

भट्टिकाव्यमें लिखाहै कि श्रीजानकीजीको मुद्रिका देतेहुए श्रीहनुमान्‌जीने कहा कि आपको अत्यन्त स्मरण करतेहुए श्रीरामजीने यह मुद्रिका अभिज्ञान रूपसे आपको देनेकेलिए आदरपूर्वक मुझेदीहै

१०—अयं मैथिल्यभिज्ञानं काकुत्स्थस्यांगुलीयकम् ।
भवत्याः स्मरताऽत्यर्थमर्पितः सादरं मम ॥ भट्टि ८।११८।

हनुमान्नाटक में वर्णित है कि श्रीजानकीजी ने श्रीहनुमानजी से पूँछा कि—

११-किमिदं हस्तेऽस्ति? तन्मुद्रिका दत्ता तेन तवैव तां निजकरात्
(हनु० ना० ६ । १४)

यह तुम्हारे हाथ में क्या है? श्रीहनुमानजीने कहा कि श्री रामजीकी मुद्रिका है। उन्होंने आपकेलिये अपने हाथसे दिया है।

१२—सौख्यावहस्य पवनात्मजनीयमाना-
रामांगुलीयकविलोकनवासरस्य ।
सत्यं कलां शततमीं भुवि नैव भेजे-
पाणिग्रहोत्सवदिनं जनकात्मजायाः॥

(चम्पूरामायणं सुन्दरं कांडं श्लो० ३०) यहां भी "राम गुलीयक" है।

१३—या शैशवावधिमनोरमरामचन्द्र-
हस्तांगुलिप्रणयिनी सुभगा सुवृता ।
अन्येव जनकराजसुता कथं नु लंकामुपागतवती मणि-
मुद्रिकेयम् । (प्रसन्नराघवनाटकम् ६ । ३८)

हिन्दीके रीतिकालीन ब्रजभाषाके कवियों में आचार्य श्रीकेशवदासजी ने अपने सुप्रसिद्धग्रन्थ राम चन्द्रिका में लिखा है कि:—

१४—आंसुबरषि हियरे हरषि सीता सुखद सुहाइ ।
निरखिनिरखि पियमुद्रिकहिं बरनतिहैं बहुभाइ ॥

१५—सुखदा सिखदा अर्थदा जसदा रस दातारि।
रामचन्द्र की मुद्रिका किधौं परमगुरु नारि ॥

यहां साफ शब्दों में 'पियमुद्रिकहिं' और 'रामचन्द्र की मुद्रिका' कहा है। वहीं रामचन्द्रिका हीमें और भी लिखा है कि:-

१६—श्रीपुर में बन मध्य मैं, तैं मग करी अनीति।
री मुन्दरी अब तियन की को करिहै परतीति ॥

१७—तुम पूँछति कहि मुद्रिके मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई तुम बिनु या कहँ राम ॥

इसका संकेत श्रीगोस्वामी तु० दा० जी ने बरवैरामायण में लिखा है कि श्रीरामजी ने श्रीहनुमानजी से कहा कि:-

१८—है कपि जीवन की अब आश न कोइ।
कनगुरियाकै मुन्दरी करकै कंगन होइ ॥

इसी पद्य का अनुवाद आचार्य केशव ने रामचन्द्रिका में-तुम पूँछति कहि मुद्रिके०। दोहे में किया है। प्रेस के प्रेतों ने इस बरवै पद्य के ऊपर का 'रामवाक्य' पद उड़ा दिया। केशव के काल [गो० जी के समय] में वह शब्द था तभी तो केशव ने अनुवाद किया कि:-

कंकन की पदवी दई, तुम विनु या कहँ राम।

श्रीरसिकविहारी जी [महांत श्रीजानकीप्रसादजी] अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रामरसायन के सर्ग ८दोहा २१६ मेंलिखते हैंकि:-

१९—लई सिया आतुर हुलसि पिय मुंदरी पहिचानि ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी से बहुत पूर्व बंगला के सुप्रसिद्ध महाकविपं०श्रीकृत्तिवासजी ने कृतवासी रामायणके सुन्दरकाण्ड

सर्ग ६ में लिखा हैकि श्रीसीताजीके सन्देह उठानेपर श्रीहनुमान् जी ने कहा किः—

२०–आमार बने चयदि ना हय प्रत्यय।
रामेर अंगुरी देख हइबे निश्चय ॥ ५२ ॥
अँगुरी देखाय तारे पवन नन्दन।
अनिमेषे जानकी करेन निरीक्षण ॥ ५३ ॥
रामेर अंगुरी देखि हइल विश्वास।
हस्तपाति लइलेन जानकी उल्लास ॥ ५४ ॥
रामेर अँगुरी देखि सीता देवी कांदे।
बूके बुलाइया सीता शिरे करि बन्दे ॥ ५५ ॥

श्रीरघुनाथदासजी रामस्नेही अपने परमप्रसिद्धग्रन्थ विश्राम-सागर के रामायणखण्ड सुन्दरकाण्ड में लिखते हैं किः—

२१-लखि मुंदरी रघुपति कर केरी। बोलीं बचन तासु तनहेरी॥

सत्रहवीं शताब्दी में खड़ी बोली के सुप्रख्यात कवि 'शीतल' ने भी लिखा है कि—

२२–देखि देखि दुष्टता दबंग दशकंधर की।
पीसि पीसि रदन कपीश हिय हारदी।
कौतुक न कठिन कुत्रास निशाचारिन की,
करुणा कुजा की कोश हृदय बिदारदी।
बैठ वीर दुबकि दुबीच नीच पल्लव की,
बारिबूँद बिलखि बिलोचन ते ढारदी॥
विरह तपीतल को 'शीतल' करन हेत।
राघव की मुद्रिका महीतल पै डार दी॥

श्रीभगवन्तसिंहजी कृत नखशिख में श्री जानकी जी का मुद्रिका से पूँछना वर्णन है कि:—

२३—प्रीतिमप्रियारीप्राण हीतमदियारी ज्योति-
जागति तिहारी दीप दीपन में सुन्दरी ।
धार्यो है सु बालपन ही ते तोंहि रामचन्द्र,
बिछुरी सो हेतु कौन कीन्हें मन तुन्दरी ॥
बाउरी न होसि तैं सुनाउरी कुशलनाथ,
छाउरी प्रमोद, काटु शोक फाँस फुन्दरी ।
जाऊं बलि बेगि सो बताउ मोंहि भाग्यवन्ति,
आई यहि ठाम क्यों तु नाथ हाथ मुन्दरी ॥

ये थोड़े से प्रमाण श्रीगोस्वामीजीके अतिरिक्त अन्य प्राचीन अर्वाचीन श्रीरामचरितवेत्ताओं के हुये, अब देखना चाहिये कि श्रीगोस्वामीजी का अपना मन्तव्य क्याहै ? वे स्वयं अपनी कौन स धारणा प्रगट करते हैंकि सहिदानी में भेजीगई मुद्रिका किस की थी;श्रीरामचन्द्रजी की अथवा श्रीसीताजीकी ? श्रीजानकी की मुद्रिकाका वर्णन मानसमें केवल एकबार आयाहै।उसेवहाँपरः-

मणिमुँदरी मन मुदित उतारी ।

केवल मणिजटितप्रकाशमानमात्र कहागयाहै चित्तहारिका नहीं। परन्तुः-

२४-पीत जनेउ महाछवि देई। कर मुद्रिका चोरि चित लेई ॥

यहां श्रीरामचन्द्रजी की मुद्रिका केलिये 'चोरिचित लेई' विशेषण लगाय है औरः-

तब देखी मुद्रिका मनोहर ।

लंका में मुद्रिका के लिये 'मनोहर' विशेषण लगा है । 'मनोहर तथा चारिचित लेई ।' दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । पुनः श्रीरामाज्ञा में श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं कि:—

२५-पाइ नाथकर मुद्रिका सिय हिय हर्ष विषाद ।
प्राणनाथ प्रिय सेवकहिं दीन्ह सुआशिरबाद॥

यहाँ 'नाथकर मुद्रिका' कहा है अपनी मुद्रिका नहीं कहा । और गीतावली सुन्दरकांडमें वर्णन है कि श्रीजानकीजी को जबमुद्रिका मिली तब:—

२६-हृदय हर्ष विषाद अति पतिमुद्रिका पहिचानि ।

यहाँभो 'पतिमुद्रिका' शब्द है निज मुद्रिका नहीं । अनेकों प्रमाणहैं कि जो मुद्रिका श्रीहनुमान्‌जी लंकाले गयेथे वह श्रीराम जी की अपनी मुद्रिका थी । ऊपर दो दर्जन प्रमाण अनेक सद्-ग्रन्थों एवं गोस्वामीजी की साक्षी के उद्‌धृत किये गये हैं ।

उपर्युक्त अनेक श्रीरामचरितमानस मर्मज्ञों एवं श्रीगोस्वामी जीकी भी अवहेलना करकेकुछपंडितमन्य लोग मानसकी कथाओं में क्यों कहते हैं कि 'जो मुद्रिका श्रीहनुमान्‌जी लंका ले गये थे वह श्रीजानकीजोकी मुद्रिका थी इसकाकारण वे अनर्थक प्रलाप करने वाले ही बता सकेंगे । कुछ लोग बनयात्रा प्रकरण में गंगा पार होने के समय जब—

केवट उतरि दण्डवत कीन्हा । प्रभुहिं सकुच यहि नहिं कुछ दीन्हा
पिय हियकी सिय जाननिहारी । मणि मुँदरि मनमुदित उतारी ॥
कहेउ कृपालु लेहु उतराई

इन पंक्तियों के आधार पर यह कहते हैं कि जब केवट ने

नहीं लियातो श्रीरामजीने उसे सीताजी को वापस न देकर स्वयं पहिन लिया और वही हनुमान्जी के हाथ भेजाथा। परन्तु यह बात किसी तरह प्रमाणितनहीं की जासकती। क्योंकि यदिश्रीराम जी ने अपने हाथमें लेकर केवट के देनेकी बात कही हो तो आगे के दोहे में पुनः मुद्रिका का श्रीसीताजी के हाथ में पहुंच जाना सिद्ध होता है। इस तरह कि—

"बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय नहि कछु केवट लेइ।"

अर्थात् मुद्रिका हाथमें लेकर श्रीरामजी ने बहुत आग्रह कया, केवटके न लेने पर श्रीलक्ष्मणजीने अपने हाथमें लेकर बहुत आग्रह किया; फिरभी उसके न लेनेपर श्रीसीताजी ने मुद्रिका को अपने हाथमें लेकर बहुतआग्रहकिया परन्तु तबभी केवट के न लेने पर श्रीजानकीजी ने पुनः अपने हाथ में पहिन लिया। अतः श्रीसीताजी की मुद्रिका श्रीसीताजी के हाथ में ही रह गई। श्रीरामजी ने अपनी ही मुद्रिका किष्किन्धा से भेजीथी। अब तापस वेष विशेष उदासी।" पर शंकाकी जाती हैकि विशेष उदासी होकर श्रीरामजी मुद्रिका क्यों लेगये परन्तु यहशंका तो यदि गंगापार श्रीजानकीजी की मुद्रिका पहिनली तबभी ऐसी ही बनीरहती बल्कि औरभी उग्र रूप में शंकाहो जाती, तबतो उदासी बनकर अयोध्यासे बनकेलिये जाना एक दम्भ होजाता।

अस्तु। जैसे मुद्रिकाके लिये शंका उठाई जाती है वैसेही धनुष, बाण, तरकस, तलवार,आदि शस्त्रास्त्र और स्त्री सीताजी भाई लक्ष्मणजी आदि परिवार केलिये भीशंका उठसकती है। क्योंकि शस्त्रास्त्र एवं पत्नी भाई आदि परिवारभी तो बिशेष उदासी के

अंग नहीं हैं। परन्तु श्रीरामजी सब ले गयेथे। इसके कई कारण हो सकते हैं—

(क) श्रीरामजी को बन लीला में जिस वस्तु की आवश्यकता थी उस वस्तु को अपने साथ ले गये थे क्योंकि—

'सदा स्वतंत्र राम भगवाना।'

'परम स्वतंत्र न सिर पर कोई' भावै मनहिं करहु तुम सोई॥

पत्नी, भाई, शस्त्रास्त्र की तरह मुद्रिका भी बनलीला के आवश्यक उपकरणों में थी। इसी से मुद्रिका साथ ले गये थे। भूषणकार पं० गोबिन्दराज जी ने तो यही समाधान ही किया है कि—

'इदमेतत्कार्यार्थेरक्षितवान् ।'

(ख) यहाँ विशेष उदासी से ग्राम संसर्गराहित्य का ही ग्रहण है जैसा कि जगह-जगह प्रसंग आने पर श्रीरामजीने स्वयं ही स्पष्ट किया है; यथा—

१-वर्ष चारि दश बास बन मुनि व्रत वेष अहार ।
ग्राम बास नहिं उचित सुनि गुहहिं भयउ दुखभार॥
२-कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीशा। पुर न जाउँ दश चारि बरीशा॥
३-पिता बचन मैं नगर न जाऊँ ॥

विशेष उदासी का तात्पर्य, नगर; गांव, पुर आदि में न जाकर चौदह वर्ष तक बन में ही रहना है—

पिता वचन तजि राज उदासी। दण्डक बन विचरत अविनासी॥

(ग) किसी किसी स्थल पर बताया गया है कि सपत्नीक या ससैन्य यात्रा में राजा या राजपुत्र को नदीमें नंगे पांवसे चल

कर पार नहीं करना चाहिये, चाहे नदीमें थोड़ा ही जल क्यों न हो, इसी से दशरथजी के जनकपुर जाते समय जनकजी ने छोटी बड़ी सभी नदियों में पुल बनवा दिया था।

आवत जानि भानु कुल केतू। सरितन जनक बँधाये सेतू॥

औरइसीसे शृङ्गवेरपुर में निषाद गुह ने भी कहाथा कि-

'कटिलौं जल थाह दिखाइहौं जू। (कबितावली)

तो भगवान् श्रीरामजी ने सपत्नीक होने के कारणही कटि पर्यन्तमात्र जलमें प्रवेश करके पार जाना स्वीकार नहीं किया था। इसी तरह राजा या राजपुत्र को पत्नी के साथ रहते हुये कर्मकाण्ड के समय हाथ में स्वर्ण निर्मित मुद्रिका धारण करना आवश्यक है। कोई भी कर्मकलाप किसी को भी रिक्त हस्त नहीं करना चाहिये।

यज्ञे, होमे, जपे, दाने, स्वाध्याये, पितृतर्पणे।
अशून्यं तु करं कुर्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः॥
(अन्हिक सूत्राबल्यामुद् धृतः मार्कण्डेयः)

श्रीरामजी सदैवके लियेतो सन्यासी हुयेही नहींथे जो सर्बथा अपरिग्रही बनते, केवल चौदह वर्षोकेलिये बनमें जाना पड़ा था, सपत्नीक रहे, नित्य नैत्तिक कर्म तो करना ही था। बिहितधर्मों को त्यागकर शास्त्रीय मर्यादा को दूषित नहीं करना चाहते थे। साथ में श्रीसीताजी न होतीं तब तो कुशसे भी काम चल जाता जैसाकि श्रीसीता हरण केबाद कुशकीप्रतिनिधि सीतासे कर्मकाण्ड का सम्पादन होता रहा। राजपरिवारके अतिरिक्त अन्य लोग भी कर्मकाण्डमें स्वर्णमुद्रिका धारण करसकते हैं परन्तुजब समय

पर दर्भ कुश की मुद्रिका न मिले तब—

यथा आह्निकसूत्रावल्यामुद्धृत कातीय सूत्राभाष्ये-
दर्भाभावे स्वर्णरौप्य ताम्रैः कार्या क्रिया सदा ॥

किन्तु राज परिवारके लिये नियम है कि—

स्वर्णाभावे रौप्यताम्रदर्भाद्याः नृपतेः क्रिया ।

इसीलिए जब तक श्रीसीताजी साथ में रहेंगी तब तक स्वर्ण मुद्रिका पहिनने के लिये श्रीरामजी बाध्य हैं। यहीकारण साथमें मुद्रिका लेजाने का है। कर्मकाण्ड की परमोपयोगी वस्तु होनेके कारण ही मुद्रिका की गणना शृङ्गार के भूषणोंमें नहीं कीजाती। इसी कारण बन जाते समय—

पितु आयसु भूषण बसन तात तजे रघुबीर ।

अन्य भूषणों को त्यागते समय श्रीरघुबीर ने मुद्रिका का त्याग नहीं किया था। इसीसे स्वयं कौशल्या जी ने रामजी को मुद्रिका पहने हुये बन जाने को कहा था—

इयं विमुंच मा बत्स राम रत्नांगुलीयकम्(प्रस०रा०ना०५।११)

(ब) धनुषबाण तरकस और मुद्रिका दशरथजी के अयोध्या राज्य की वस्तु भूषण नहीं थी, इन्हें तो श्रीरामजी अपने साथ त्रिपाद्व विभूति से लाये थे। प्रगट होते समय साथ में लिये थे, देखिये जन्म छन्द—

भये प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी ।
निज आयुध भुज धारी···। भूषन बन माला ।

मुद्रिका त्रिपाद्वविभूति कीही वस्तु होनेके कारणहीबोलती थी।

शंका ४५

जो प्रिय विरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे ॥

मृषा न कहौं मोर यह बाना, राम बाक्य निज तोलैं।
भरत रामही की अनुहारी भरत मृषा किमि बोलैं ॥

श्री भरतजी की बाणी मिथ्यात्व का स्पर्श नहीं की सकती तो आगे क्या देखा और क्या सुना ? (रामदत्त तिवारी)

समाधान

राम भरत दोउ एक हैं, तत्व रूप रंग रेख।
भरत लखत नित रामपद, राम भरत मुख देख॥

वैसेतो दुःख शोकके बेगमें मुख से निकली हुई बात का कोई मूल्य नहीं हुआ करता। श्रीभरतजी का आन्तरिकदुःख है। उसी दुःखमें उक्तशब्द निकलेहैं। अतः इसमें कोई तथ्य नहींही होना चाहिए। परन्तु आगे चलकर ऐसी घटनायें संघटित हो गईं उससे निश्चय हो गयाकि शोकमें भी निकले हुए श्रीभरतजी के शब्दोंने मिथ्यात्व का स्पर्श नहीं ही किया अर्थात् श्रीसीतारामजी का आरण्यक कष्ट देखा और अपने ही वाण से हनुमानजीकामूर्छित होना देखा। तथा हनुमानजी द्वारा सीता हरण और श्रीलक्ष्मणजीको मरणतुल्य महामूर्छा का आजाना सुना।

शंका ४६

'प्रेम अमिय मन्दर विरह भरत पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटे सुर साधु हित कृपा सिन्धु रघुवीर॥

यहाँ समुद्र मंथन का पूर्ण रूपक क्यों नहीं है ?

(पं० नन्दराम पाठक, श्याम' बी० ए० नादौरा छतरपुर)

समाधान

महा महिमा जलसों परि पूर्ण पयोधि अपार भरत्त रहे।
अमृत प्रेम अनूप भरे तिहि काढ़न श्रीरघुवीर चहे॥
विरहाचल मंदर मेलि मथे सुर सन्त उछाहि सुधासु लहे।
हिय श्रीतुलसी समुझाइ दिये, तब रूपक सांग कुमार' कहे॥

कवि—संसारका नियमहै कि उनकी दृष्टिमें जो वस्तु अपार अगाध अथवा अथाह ज्ञात होती है उसे समुद्र कहदेते हैं। किसीभी सुकवि प्रथा की अवहेलना गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज ने नहींकी है, तबभला इसकीही उपेक्षा कैसे करजाते परन्तु श्रीगोस्वामीजीकी यह अपनी विशेषताहै कि हरएक बातको किसी विशेष रूपमें हो यत्र तत्र कह देतेहैं। आपने अनेक वस्तुओंको मौके मौके से समुद्र कहाहै, जिनमें कई स्थलों पर विभिन्न वस्तुओं किंवा व्यक्तियों को समुद्रका रूपक देकरके उसमेंसे मन्थनके द्वारा अनेक रत्नोंका प्राकट्य दिखलाया है। जैसे श्रीराम-रूप को अनेकों बार समुद्र कहा इस रामरूप सिंधु की रत्नप्राप्ति, मंथन-क्रिया आदिका रूपक, छबि-समुद्रके रत्न' शीर्षक लेखमें और ब्रह्म पयोनिधिका सांग रूपक, वेदाब्धि मंथम शीर्षक समाधान में देखनेकी चेष्टा मैंने की है। यहाँपर प्रस्तुत समाधान में 'श्रीभरताब्धि मंथन' को सांग रूपसे देखना चाहताहूं।

समुद्रमें मंथनका सांगरूपक तब होताहै जब समुद्र; जल, कच्छप, मंदर, वासुकी, औषधियाँ एवं देवता तथा दैत्य सभी होतेहैं, तब चतुर्दश रत्नकी प्राप्तिका रूपक ठीक पड़ताहै।

प्रेम अमिअ मंदर बिरह, भरत पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥

यहाँ भरतजी को समुद्र कहा पर जल नहीं बताया कि भरत समुद्र में क्या जल भरा है। समुद्र जल नहीं है। अपितु जलके रहनेका आगाध स्थान है, समुद्र मंथन के सहकारी साधन, कच्छप, दैत्य, औषधियाँ, वासुकी आदि एवं मंथन फल सुधातिरिक्त त्रयोदश रत्नों की चर्चा इस स्थल पर नहीं है; परन्तु इनके बिना रूपक अपूर्ण रह जाता है और रूपक की सारी सामग्री श्रीरामचरितमानस में ही बिखरी पड़ी है। वही यहाँ एकत्र करदी जा रही है।

समुद्र—भरतजी "भरत पयोधि गम्भीर"

जल-श्रीभरतजी की अगाध महिमा--भरत महा महिमा जल रासी

साधारणासाधारण भेदसे महिमा दो तरह की होतीहै। श्रीभरतजीकी दोनों महिमा महानहै। साधारण महिमा जल तुल्य है और असाधारण महिमा लक्ष्मीवत हैं जो आगे वर्णितहै।

मन्दराचल—श्रीराम विरह "मंदर विरह"

औषधियाँ-श्रीभरतजी में समस्त वेद विहित धर्मोंका समावेशहै—जो न होत जग जनम भरतको। सकल धरमधुरि धरणिधरतको॥

कच्छप—कच्छप के ऊपर नीचे पेट पीठ दोनों कठोर होते हैं। कच्छप ही मन्दराचल धारण का कारण हुआ था, वैसे ही दोनो बरदान ही श्रीभरतजी के लिये विरह दुःख के कारण हुए और दोनों बरदान कठोर होने से कच्छप हुए '

दोउ वर कूर-कठिन हठ धारा।

देवता-दिव्य कल्याण गुण गण बिशिष्ट-"कृपा सिन्धु रघुवीर"

दैत्य—तामसीमाया समन्विता मन्थरा और श्रीकैकेयीजी

हैं। दैत्योंमें जैसे महातामसी हुँड नमुचि आदि थे और परमभागवत बलिभी थे वैसे यहाँ परमतामसी मन्थरा और महाभगवत जननी श्रीकैकेयीजी थीं ।

वासुकी—तर्क, सांप की पूँछ शीतल और मुख विषाक्त अतएव उष्णत्वमय होता है। इसी तरह तर्क का आरम्भ जोश खरोश लेकर होने से उष्ण और अन्तिम सुविचार सुख शान्ति प्रद शीतल—"यस्तर्केणानु सन्धत्ते सधर्म वेद नेतरः।" (मनु)

वासुकी के निकले बिषमें दैत्य जलने लगे थे, पर पूंछ की तरफ होनेसे देवतालोग शीतल रहगये। श्रीराम जी शीतल ही रहे। पर—

आगे जरति दीख रिस भारी।

कैकेयीजी जलतीथीं। इसतरह मन्थनसामग्री का दर्शनकरके अब चतुर्दशरत्न देखनाचाहिये। जो वे चौदहरत्न जो समुद्रसे निकलेथे-

विष मणि रम्भा बाजि श्री, बारुणि वैद्य बिचार।
शंख धेनु धनु चन्द्र तरु, गजपति अमिय 'कुमार'॥

१ श्री— श्रीभरतजीके स्वभाव की महा महिमा। समुद्र-मन्थन से निकलनेपर सिन्धुजा श्रीजीको सभी चाहतेथे पर श्रीजी की जयमाला किसीको प्राप्त नहींहुई, मिलीतो एकमात्र श्र हार को ही। इसीतरह श्रीभरतजीका स्वभाव एवं उनकी महामहिमा सब कोईही जानना चाहतेहैं, परतु—"भरत सुभाव न सुगम निगम हू।" और श्रीरामजी पूर्ण रूप से जानते हैं—

तात तुमहिं मैं जानउँ नीके।

भरत महामहिमा सुनु रानी। जानहिं राम··········॥

२ मणि – श्री भरत जी का व्यक्तित्व –

कसे कनक मणि पारिख पाये। पुरुष परखिअहिं समय सुहाये॥

३ रम्भा – वेश्या चिन्ता –

नीद पुरातन गेहनी सोवति सब निशि साथ।
वार वधू चिन्ता लखत उझकि झाँकि फिरि जाति॥

सुना जाता है कि स्त्री (खासकर बार वधू अन्य स्त्री) समस्त नशीथ जगा रखतीं हैं –

सोचत भरतहिं रैनि बिहानीं।

४ वाजि—बनमग दशा–वाजी की उत्तमता चंचलतामें है।

सुभग सकल सुठि चंचल करनी।
"चंचल चपल चिहूंकना वहु भोजन वहु रोष॥
ये ते तुरयैं गुन करे ये ते तिरियैं दोष।" (नीतिरत्न)
"बाजी चंचल होइ सवारै युद्ध जितावै॥" (वैताल)

चित्रकूट जातेसमय श्रीभरतजीकी वन मगदशा बड़ी चंचलथी–

भरत दशा तिहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल अलिगति जैसी॥

५ बिष – तर्कपूर्ण शपथ–विष भक्षण हानिप्रद शपथ हानिप्रद–

साँचेहु शपथ अघाइ अकाजू।

बिससे हानि उठानेवाले दैत्य-मन्थरा और श्रीकैकेयीजी मंथरा—

टूटेउ कूबर फूट कपारू। दलित दशन मुख रुधिर प्रचारू॥

श्रीकैकेयीजी – "नाहित जरहि जन्म भरि छाती।"

"लीन्ह विधवपन अपयश आपू॥"
"कुटिल रानि पछितानि अघाई॥"

६ वारुणी – माता कैकेयी को कटु कहना—

करत मनोरथ जस जिय जाके । जाहि सनेह सुरा सब छाके ।।
शिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं । विह्वल वचन प्रेमवश बोलहिं ।।

जारेउँ जाइ जननि कहि काकू—

वारुणी के नशा में अंट्ट संट्ट बोला ही जाता है ।

१३ अवतार – धन्वन्तरि वैद्य = प्राकृतसमुद्र मन्थनसे भगवानका एक लघु अंशावतार वैद्य धन्वन्तरिके रूपमें हुआथा, परमदिव्य श्रीभरताब्धि मन्थनसे भगवानका (दश महअवतारों में से एक) महानअवतार बाराहअवतार हुआ ।

शोक कनक लोचन मति छोनी । हरी विमल गुन गन जग योनी ।।

भरत विवेक वराह विशाला ।

८ शंख —निमल घोष–यथा – गीता—

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ।।

इसी तरह श्रीभरतजी का निर्णय घोष सुनकर–

"भरत वचन सब कहँ प्रिय लागे ।"

भा सबके मन मोद न थोरा । जनुघन धुनि-सुनि चातक मोरा ।।

९ धेनु—श्रीभरतजीका आचरण । धेनुसे निकला दूध, घी, दही, मल (गोबर) मूत्रादि सभी कुछ परम पवित्र होने से जगतमें धर्मसार रूपहै । सभीधर्मकार्योंमें गृहीत है । इसीतरह–

परम पुनीत भरत आचरनू ।

समुझब कहब करब तुम जोई । धर्म सार जग होइहिं सोई ।।

१० धनु–विनु फर सायक मारेउ चाप श्रवण लगि तानि ।

श्रीभरत समुद्र निकला धनुषसदा अमोघ अस्त्र छोड़ता है ।

११ चन्द्रमा---श्रीभरतजी का स्वभाव--

भरत स्वभाव सुशीतलताई। सदा एक रस बरनि न जाई॥

शरदा तप निशि शशि अपहरई।

७ कल्प वृक्ष---श्रीभरतजी का वचन, कल्पवृक्ष सबको प्रिय लगता है।

भरत वचन सब कहं प्रिय लागे।

१२ गज ऐरावत—श्रीभरतजीका प्रश्न, ऐरावत को इन्द्रके अतिरिक्त कोईभी सम्हालनहीं सकता; पकड़नहीं सकता ऐसे श्री-रतजीका प्रश्न एकमात्र श्रीरामजीही समझ सके-पकड़ सके थे अन्य कोईनहीं।

सकल विलोकत भरत मुख बनै न उत्तर देत।

ज्यों मुख मुकुरमुकुर निजपानी। गहिना जाइ असि अद्भुतबानी॥

१४ अमृत—प्रेम-अमृतका स्वाद कहा नहीं जा सकता है अकथनीय है। इसी तरह—

भरत प्रेमतिहि समय जस तस कहि सकैं न शेष।

राम प्रेमभाजन भरत बड़ी न यह करतूति॥

राम प्रेम मय अमिय अघाहू। किन्हेहु सुलभ सुखद बसधाहू॥

उस अमृतको देवताओं में बांटनेके लिये श्रीहरिने मोहिनी रूप लिया था इस अमृतको साधुओंमें बांटनेके लिये श्रीहरिने श्रीगोस्वामीजी की मोहिनीमतिको प्रेरित करके मानस द्वारा जगतको बाँटा—

'तस कहिहौं हिय हरि के प्रेरे।"

और आजभी बांटतेही रहतेहैं। अमृतकी मधुरिमा प्राप्त कर

लेने के बाद फिर समस्त मधुरिमायें फीकी लगने लगतीहैं।

"जौ तोहिं राम लागते मीठे।
तौ नौ रस षट रस अनरस रस होइ जाते सब मीठे ॥ बि०
तुलसी जौ लगि जगत की सुधा माधुरी मीठि।
तौ लौं सुधा सहस्त्र सम राम भगति सुठि सीठि ॥ दो०

अतएव अन्यमधुरिमाओंसे स्वाभाविक ही घृणा होजाती है। श्रीभरतप्रेमामृत प्राप्त करलेने के बाद स्वभावतः जागतिक भवप्रद सुधामाधुरी से अवश्य ही विरति हो जातीहै। यही श्री-भरतप्रेमामृत की मधुरता है।

भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम, अवशि होइ भवरस बिरति ॥

यह सांग रूपक हुआ।

शंका ४७

भा सबके मन मोद न थोरा। जनुधन धुनि सुनि चातक मोरा ॥

श्रीभरतजी का निश्चय सुनकर लोगोंको चातकऔर मोर दोजातिके पक्षियोंके समान हर्ष क्यों हुआ ?

समाधान

नमो भरत पद सब सुखद घनज्यों जीवन दानि।
सुर नर मुनिसब आदरत करत रामप्रिय कानि॥

रामाज्ञाप्रश्नावली, वैराग्यसंदीपनी और रामचरितमानस के कुछदोहोंको मिलाकर गोस्वामीजीके स्फुट दोहोंका संकलन किसीने दोहावली नाम से किया है। और किसीने दोहावलीमें

कुछसौ दोहे और मिलाकर तुलसी सतसई नाम से संकलित कर दियाहै। दोनों में छतीस दोहों में चातक के अन्यन्यप्रेम का वर्णन है। उस प्रकरण का नाम विद्वानों ने चातकछतीसा रख लिया है। कुछदोहे येहैं—

सुनु रे तुलसी दास, प्यास पपीहहिं प्रेम की।
परिहरि बारह मास, जो अँचवै जल स्वाति को॥३०६॥
जाँचै बारह मास, पिये पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही नेह मन॥ दो० ३०७॥
तुलसो के मत चातकहि, केवल प्रेम पियास।
पियत स्वाति जल जान जग, जाँचत बारह मास॥ ३०८
आल बाल मुक्ताहलनि, हिय सनेह तरु मूल।
होय हेतु चित चातकहिं, सलिल स्वाति अनुकूल॥ ३०६

सारांश यह है कि चातक एकमात्र स्वाति के जलको ही ग्रहण करता है। अन्यमेघोंका नहीं। यहाँ तक कि—

कबहुँ न नाई नारि, चातक घन तज दूसरेहिं॥ दो० ३०५

और स्वातीनक्षत्रका मेघ आता है वर्षाऋतु बीत जाने पर शरदऋतुमें। हां ग्रीष्मऋतुके अन्तमें वर्षाऋतुके आरम्भ में जब मेघ गजरता है तब चातक को प्रसन्नता होतीहै कि अब मेराप्रिय स्वातीकामेघ शीघ्रही आने वाला है। परन्तु मयूर बादलमात्रका प्रेमीहै। वह चाहेकिसी ऋतु का हो। यहाँतककि मेघगर्जनके समान दुसरीगम्भीरध्वनि सुनकर आनंदित होजाता हैं। मेरेयहां सखिपर्वतके जंगलमें मोर बहुतहैं। कभीकभीदेखता हूं कि मन्दिरमें आरती केसमय नगाड़ा बजनेपर उसकीध्वनिसे

आनंदित होकर मोर बोलने और यदा कदा श्रीराम ग्रन्थागार की छतपर नाचने भी लगते हैं।- अर्थात् मोरकिसी मेघविशेष का अनन्य प्रेमी नहीं अपितु मेघमात्रका अथवा गंभीर ध्वनि मात्र का प्रेमी है है।

"लछिमन देखहु मोरगन नाचत बारिद पेखि"

इसीतरह अयोध्यामें दोतरहके लोग हैं एकतो ऐसेहैंकि राम या भरत में कोईभी राजा हो उन्हें प्रसन्नताहै वे मोरवत् हैं। औरएक वे हैं जो एकमात्र रामजीको ही राजारूपमें प्राप्तकरना चाहते हैं वे चातकवत् हैं। उनको भरतजीकी बात से बहुत प्रसन्नता हुई कि अब शीघ्रही रामजी लौटालिए जाकर राजा बनाये जायेंगे।

शंका ४८

श्रीरामजीको बनसे लौटानेके लिये श्रीभरतजीके साथ सभी अयोध्या बासी गयेथे, यहाँतक कि बनदेनेवाली माता-कैकेयीजीभी गईथीं। परन्तु मंथराकी चर्चानहीं आतीतो मंथरा चित्रकूट गईथी अथवा नहीं ? (श्रीकृष्ण सिंह)

समाधान

मंथरा चित्रकूट नहींगईथी, क्योंकि वह कहीं जानेयोग्य स्थिति में नहीं रहगई थी। कारण यहथा कि श्रीशत्रुघ्नजीने जब उसे—

हुमुकि लात तकिकूबर मारा। परि मुँहभरि महिकरत पुकारा॥
टूटेउ कूबर फूटकपारू। दलित दशन मुख रुधिर प्रचारू॥

इसके बाद भी—लगे घसीटन धरि धरि झोंटी

मन्थराका कूबर टूट गयाथा,सिर फूट गयाथा, मारसे सब दाँत झड़गयेथे और घसीटने से सारीदेह छिलगईथी इसलिये वह राजकीय चिकित्सालय-अस्पतालमें रही। इससे नहीं गई। दूसरे यदि स्वस्थ होती तबभी न जाती क्योंकि डरती रही कि श्रीरामजी का बनकष्ट देखकर श्रीशत्रुघ्नजी तथा अन्य अयोध्या वासी उसकी क्या दुर्दशा करेंगे, अनुमान कियाजा सकता है।

शंका ४६

आरत जननी जनि सब, भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकी, सजन सुखासन यान॥
शिबिका सुभग न जायबखानी,चढ़ि-चढ़ि चलतभई सबरानी।

जब सभीरानियोंकेलिए पालकी; सुखासन यान शिबिका आदिथे तबश्रीकौशिल्याजीकेलिए डोलीऐसी निकृष्टसवारी क्यों?

जाइ समीप राखि निज डोली।

समाधान

शोक शिथिल तनु दूबरो; बात्सल्यरस पीन।
बन्दहुं कौशल्या भरत राम पुत्र सम लीन॥

शिबिकाः— आदमियोंकेकंधेपर ढोईजानेवाली बड़ी ही सुखदाई सवारी होती रहीहै। उसपर एकसाथ चार पाँचआदमी आनन्द से विश्राम करतेहुए जातेथे। उसे एक साथ कमसे कम ३२ वाहक-कँहार कन्धे पर ढोते थे। शिबिकारोही उस कर लेटकर चाहे जैसेरहे। दो चार दासदासी पंचा चंवर पग-चम्पी आदिभी करते रहसकतेथे। भोजनपानकी भीतैयारसामग्री प्रस्तुतरहती थी। पालकी शिबिकासे कुछ नीचे स्तरकी होतीरही

उसे एकसाथ २४ या १६ बाहक कहार ढोतेथे। उसपर एकसाथ केवल चारआदमी रहसकतेथे। अन्यसुविधायें वैसे ही रहती थी। पीनस आठवाहक ढोतेथे। उसपर केवल दो आदमीही चल सकतेथे। मियाना चार बाहक एकसाथ ढोते थे। उस पर एकही आदमी सो सकता है। डोलीभी चार या छः वाहक ढोतेहैं। उसपर आदमी सो तो नहीं ही सकता पर आराम से बैठ भी नहीं सकता है।

विषम कहार मार मदमाते (विनय पत्रिका)

डोली बहुतछोटी होतीहै। उसपर आदमीसिकुड़ सिमिटकर बड़ेकष्टसे बैठसकता है। उसपर पांव भी नहीं फैलायाजासकता शिविका और पालकी दोनोंही सुखासन यान हैं। माता श्री-कौशिल्याजी थीं तो उत्तमशिविका परही परन्तुवे दुःख शोका-भिभूत होकर इतनी सिकुड़ी सिमिटी उसशिविका में बैठीथीं जितनीकि डोलीमें बैठा जासकताहै। इसोसेउसे निजडोलीकहा

शंका ५०

श्रीभरतजी जब श्रीरामजीको लौटानेकेलिए ही चित्रकूट जा रहे थे तब अपारचतुरंगिणी सेना क्यों साथमें लिया ? जिससे कि निषादराजगुह एवं श्रीलक्ष्मणजीकोभीभ्रमहोगया।

(पं० देवशरण त्रिपाठी "कंज" रामायणी प्रयाग)

समाधान

धनुष बाण प्रभुकर लखत होत दास उर चैन।
रक्षक राम कुमार लखि हारि जात मन मैन॥

पूर्वके एकसमाधानमें बतायाजा चुकाहै कि जबतक सारी सैन्य सलामी न देले अपनाराजा न स्वीकार करले तबतक वह राजा या युवराज नहींमानाजा सकताथा, ऐसी राजतंत्र देशकी प्रणाली थी और है कारण कि—

"राजाऽऽमात्यसुहृत् कोशराष्ट्र दुर्गवलानि च ॥ श० र० मं०

इन सात अंगों में राजा और आमात्य तो बहिः प्राणचरः सखा अभिन्नमित्र होतेही हैं। सुहृद भी ऐसे ही होते हैं और उत्तम सैन्य के रहने परही कोश एवं राष्ट्र (राज्य) का बिस्तार तथा दुर्ग (किला गढ़) का निर्माण किंवा प्राचीन पराये दुर्गपर आधिपत्य होही जाताहै। अतः सैन्य राजाकी प्रधान शक्ति होनेसे ही सैन्य का दूसरा नामही बल भी रख दिया गया है। समस्त सेना समवेत रूपमें जब किसी को राजा मान लेती है और घोषित कर देतीहै तो वह राजा हो ही जाताहै। राजा हो जाने के बाद वह चाहे महल में बैठा रहे चाहे बन में विहार मृगया आदि करते रहें अथवा कहींभी घूमता रहै वह राजा हो ही जाता था। यही कारण है कि प्रथम जब श्रीरामजी ने भरतजीका आगमन सुना तो भरतागमन का कारण न जानने के कारण चिन्तित हुए विचार में पड़ गये।

बहुरि सोचवश भे सिय रमनू। कारन कवन भरत आगमनू॥

पुनः जब आकर किसीने कहा कि भरतके साथ में बहुत बड़ी चतुरंगिनी सेनाभी है वैसेही श्रीरामजी समझ गये कि सेना से सलामी दिलाकर मुझे राजा बनाने के लिये भरत सेना लेकर आ रहे हैं। इस तथ्य का स्मरण आतेही चिन्ताका स्रोत पलट

कर बन गया कि "उत पितु बच" उधर पिता का बचन कि राम जाहिं बन राज तजि और इत इधर एतत्कालीन अयोध्या नरेश भाई भरत का संकोच सलाभी के लिए सेना लाना है।

एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥
सो सुनि रामहिं भा बड़ सोचू। उत पितु बच इत बन्धु सँकोचू॥

जब एक अयोध्यानरेश का बचन मानकर राजत्यागा है तो वर्तमान अयोध्यानरेश का बचन मानकर राजा भी बनना पड़ेगा यही संकोच का बड़ा कारण है।

शंका ५१

पूँछियमोहि उपाय अब सो सब मोर अभाग।

यहाँ श्रीभरतजी के "अब" कहने का क्या तात्पर्य है। (अनन्तराम)

समाधान

धर्मशास्त्र प्रणेताओं महर्षियों की आज्ञा है कि--

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥
(वा० रा० २।२१।१३)

शत्रोरपि गुणावाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। (महाभारत)

बैरिउ राम बड़ाई करहीं।
"रज्जब" साँचे शूर को बैरी करै बखान॥

श्रीभरतजी कहते हैं कि मुझसे अब उपाय पूँछते हैं कि-
किहि बिधि अवध चलहिं रघुराई। कहहु समुझि सोइ करिय उपाई

जब उपाय पूँछना चाहिये था तब तो पूँछा ही नहीं और जब काम बिगड़ गया तो अब उपाय पूँछते हैं। कब पूँछना चाहिए

था ? तो जब श्रीरामजी बनके लिये प्रस्थान करनेलगे तब आप उसीसमय रोकदेते कि अभी रामजी बन नहीं जासकते क्योंकि मझिली महारानी कैकेयीका बरदान माँगना पहले भरतका राज-तिलकहोना माँगनाहै, उसके (भरतके टीकाके) बाद दूसरा बर-दान रामजीकी बनयात्रा है। यथा—

१- प्रथमवर – देहु एक बर भरतहिं टीका।

२ - मागउँ दूसर बर कर जोरी। चौदह वर्ष राम बनबासी ॥

बिनापहला बरदान पूरा हुए, दूसरा बर कार्यान्वित नहीं किया जासकता। ऐसा कहकर आप श्रीरामका बनगमन रोक सकते थे। आपकी आज्ञा की अवहेलना करनेवाला त्रिलोकमें कहीं कोई है ही नहीं। आपतो–

सो गुसाइं जिहि बिधि गति छेंकी। सकइ को टारि टेकजो टेकी॥

अतः उस समय आप श्रीरामकी बनयात्रा स्थगित करके मुझे बुलवाते और तब मुझसे उपाय पूंछते तो ठीकहोता, परन्तु अबतो मेरे दुर्भाग्यसे श्रीरामजी बन चलेआये और पिताजी स्वर्ग सिधारगये। सबकाम तो बिगड़ही गया। जब उचित था तब यदि मुझे बुलाकर पूंछते तो कोई काम न बिगड़ता। यही श्रीभरतजी के।'अब'' कहने का तात्पर्य मालूम पड़ता है।

शंका ५२

क्यों–विधि हरि हर माया बड़ भारी।
सोउ न भरत मति सकइ निहारी॥

समाधान

बहु बिधि हरि हर के जनक राम प्रेमप्रन पीन।
महाविष्णु श्रीभरत पद रहहु सदा मन लीन॥

क्षणं ध्यात्वा ययौ ब्रह्मा कैलशं त्रिदशैः सह ॥१०॥
तुष्टुवुर्मुनयः सर्वे ससुरोरगकिन्नराः ।
जय जय माधव ! देवेश ! जय भक्तजनार्तिहन् ॥१६॥
(पद्मपुराण पातालखंड अध्याय ७)

कैलासकीसभामें समस्त देव कृत "जय जय सुरनायक" समष्टि स्तुतिपर देवदुःख भंजनार्थ जब परब्रह्मकृत आकाश बाणी हुईथी तो उसमें ब्रह्मने अपने साथसाथ अपने कईअंशों केभी अवतार लेनेका उद्घोष कियाथा ।

जनि डरपहु मुनिसिद्धि सुरेशा, तुम्हहिं लागि धरिहौं नर बेषा।
अंशन सहित मनुज अवतारा, लइहौं दिनकर बंश उदारा ।
कश्यप अदिति महा तप कीन्हा, तिन कहँ मैं पूरब बर दीन्हा ॥
ते दशरथ कौशिल्या रूपा, कौशल पुरी प्रगट नर भूपा ।
तिन के गृह अव तरिहौं जाई, रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ।

मैं दशरथके गृह में चाररूपसे अवतार लूंगा चारोंभाई बनकर। यही बात भागवत मेंभी कही गई है ।

तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः ।
अंशांशेन चतुर्धाऽगात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥ भा० ६।१०।२)

उनचारमें एकतो परब्रह्म स्वयं श्रीरामजीहीहैं । अन्य भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनभाई परब्रह्म के अंश हैं। इन अंशोंका सांकेतिकपरिचय मनुप्रकरणमें है।

उपजहिं जासु अंश तेनाना, शंभु बिरंचि बिष्णु भगवाना।

अर्थात् नानाविधिहरिहर भरतसे नानाविधिहरिहर लक्ष्मण से और नानाविधिहरिहर शत्रुघ्नसे उत्पन्नहोतेरहतेहैं। इस

तथ्य का विस्तृतविविरण मानससंघ रामबन सतनासे प्रकाशित मेरे मानससिद्धान्त प्रथमखण्डमें देखा जा सकताहै। श्रीभरतजीसे नानाविधिहरिहर उत्पन्न हुआ करतेहैं इसलिए एक ए रा ि हरिहर की माया चाहे जितनी बड़ीहो वह भरतमतिको कैसे निहार अर्थात् अभिभूत करसकती है -

शंका ५३

देह दिनहिं दिन दूबरि होई, घटइ तेज बल मुख छबि सोई ।
तप से तेज घटता क्यों है सोई से क्या तात्पर्य है ?

समाधान

तनु दुर्बल नित तप निरत जिमि निदाघ हिम मन्द ।
राम प्रेम तन तेज बल बढ़त शुक्ल जिमि चन्द ॥

किसी शब्दके अर्थ करनेकेलिए अभियुक्तोंने कुछ नियम बनाया है—

शक्ति ग्रहं व्याकरणोपमानात्कोशाप्तवाक्याद्व्यवहारतश्च ।
वाक्यस्यशेषाद्विवृतेर्वदन्ति सानिध्यतःसिद्धपदश्चवृद्धाः॥वाचस्पत्यम्

अर्थ करनेमें प्रधानता ब्याकरणशास्त्रकीहै और ब्याकरण शास्त्र पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के—

घट् चेष्टायाम् (भ० आ० से) घटति की णिजन्त (ण्यन्त) प्रकिया में "मितॉं ह्रस्वः" ६ । ४ । ५२ सूत्रसे जैसे 'ज्ञपयति' 'यमयति' आदि बनाताहै। वैसेही "घट चेष्टायाम्"(भा०आ०) से धातु का घटयतिरूप होताहै जिसका अर्थ होताहै चेष्टाकरता है उसी घटति और घटयति का मानसमें यहाँ "घटइ" है ।

घटइ तेज, बल अर्थात् तेज और बल चेष्टा करता है। अर्थात् उत्तरोत्तर बढ़ता रहताहै। क्योंकि तप से शरीर क्षीण होताहीहै

"देखि उमहिं तप खीन शरीरा

परन्तु तेज बढ़ता है तेज का विस्तार होता है।

"बिनु तप तेज कि कर विस्तारा"

जोलोग कोशोंके आधार पर घटइका अर्थ कमहोना करिके तेजका अर्थ चर्बी मेदा आदि करते हैं वे नहींसोचतेकि चर्बी-मांस मेदका कमहोना तो "देह दिनहिं दिन दूबर होई" मेंही होगया, बिना चर्बी घटे देह कैसे दूबरी हो सकेगी। घटइ शब्दका प्रयोग जहाँ रामचरित मानस में कम होने के अर्थमें हुआ है।

"घटइ बढ़इ बिरहिन दुखदाई" घटिहि न जग नभदिनदिन दूना

वहीं घटइ शब्दका अर्थ बढ़ने लगने अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है:-

"अब जो तात दुरावउँ तोही, दारुण दोष घटइ अतिमोही

"पुनि जिहि कहँ जस होब रजाई,सो सब भांतिघटिहि सेव काई"

विनयपत्रिका में भी इसी तरह का प्रयोग है। इसी अर्थमें है-

लाभ कहा मानुस तन पाये।

काय बचन मन सपनेहुँ कब हुंक घटत न काज पराये।

अङ्गदेन समं योद्धुमघटिष्ट नरान्तकः ॥

भट्टि काव्यम् १५।७७ अघटिष्ट=घटतेस्म समर्थो भवति)

नैषधकराने भी इसीतरह के अर्थमें प्रयुक्त किया है।

अनेन भैमी घटयिस्यतस्तथा विधेः॥ नैषध १।४६ तात्पर्य यह है कि श्री भरतजी नन्दि ग्राम में असन बसन ब्रत नमां।

करत कठिन रिषि धर्म सप्रेमा ॥

के कारण यद्यपिकि देह नित्यप्रति दूसरी (क्षीण) होती जारही है परन्तु तपके प्रभावसे तेज और बल बढ़ता जारहा है । लेकिन—

"मुख प्रसन्न नहिं मानस खेदा ॥

मुख पर वही अप्रसन्न उदासीन छवि रहती है ।



❀ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❀

❀ श्रीराघवाय नमो ममः ❀

❀ श्रीराघवाष्टकम् ❀

१—जय रघुनन्दन दुष्टनिकन्दन मारुतिनन्दनप्रेमधनम् ।
जय सियत्राता सब सुख दाता राघव पालय दीनजनम् ॥१॥
२–जयमुनि तियतारी स्वश विहारी नृपमख खण्डितशम्भुधनुम् ।
जय सिय दूलह रूप अनूलह राघव पालय दीनजनम् ॥२॥
३–जय अनुज सहाया तजिगृह माया गुहपर दाया कीन्हघनम् ।
किय कामद बासीमुनि सुखराशी राघव पालय दीनजनम्॥३॥
४–प्रिय भरत मनाये दण्डक धाये शूर्पणखा श्रुतिघ्राण हनम् ।
पितु गीध उधारे शबरी तारे राघवपालय दीनजनम् ॥४॥
५–हनुममत कपि प्यारे बालि बिदारे कीन्ह सुखी सुग्रीव जनम् ।
सिय शोक नशाये मुँदरि पठाये राघव पालय दीन जमम् ॥
६–लंक जराये सेतु बँधाये लिये विभीषण शरण परम् ।
दूत पठाये रिपु समुझाये राघव पालय दीन जनम् ॥
७–घटकर्ण नशाये लक्ष्मण ज्याये मेघनाद शिर बाहु हनम् ।
रावण मारे सोय सुधारे राघव पायल दीन जनम् ॥
८–संग कीश सुहाये औधहिं आये पुरजन परिजन शोक हरम् ।
राज्यासन चढ़ि रामकुमारहिं राघव पालय दीन जनम् ॥
यह अष्टक सुन्दर कलित विनय वर श्रीरघुनन्दन चरितपरम् ।
नित करै सुपाठै भव भयकाटै राघव पालिहिं दीन जनम् ॥

(अप्रकाशित स्तोत्र मंजरी से)

रामचरितमानसातिरिक्त उद्धृत ग्रन्थानुक्रमणिका

❋ विषय सूची ❋



लेखक प्रकाशित प्राप्य पुस्तकें।

१— मानस पारायण पूजन पद्धति	४२ पैसा
२— धर्म रथ	७५ ,,
३— मानस सिद्धान्त	२.५० ,,

उपर्युक्त तीनों पुस्तकों के मिलने का पता—

मानस संघ, रामबन, सतना, (म० प्र०) से प्राप्य हैं।

१—वेदों में राम कथा	४)
२—जानकी चरण चामर	२)
३—सीता गुण गान	१)
४—राम चरित के तीन क्षेपक	१)
५—मानस शंका समाधान रत्नावली प्र० भाग	४)
६— ,, ,, ,, ,, द्वि० ,,	४)
७—मानस में नारी दीक्षा और नारी निन्दा	५० पैसा
८—मानस में दो दान	५० ,,
९—सखी गीता	३७ ,,
१०—प्रेममयी मुद्रिका	२५ ,,
११—मानस चतुरतीकुसुमाञ्जलि	२५ ,,
१२—भागवत में रामपरत्व	१६ ,,
१३—श्री राम स्वभाव	३१ ,,
१४—मंगल पचीसी	१५ ,,
१५—सम्वाद बत्तीसी	१२ ,,
१६—जननी शतक	१) रु०

मुद्रकः—मृत्युञ्जयदास, दास प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी।